वर्तमान युग में फ़तवा के परिवर्तन के कारण

लेखक

अल्लामा डा0 यूसुफ़ अल क़रज़ावी

अनुवादक

अब्दुल्लाह दानिश

© सर्वाधिकार सुरक्षित, प्रकाशक

पुस्तक का नाम	:	वर्तमान युग में फ़तवा के परिवर्तन के कारण
लेखक	:	अल्लामा डा0 युसूफ़ अल क़रज़ावी
अनुवादक	:	अब्दुल्लाह दानिश
पृश्ठों की संख्या	:	150
प्रकाशन वर्श	:	2011
मूल्य	:	

विशय सूची

प्राकथन मौ0 ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी 7

ऊर्दु अनुवादक की ओर से दो भाब्द मौ0 मुशताक़ तुजारवी 13

भूमिका डा0 युसूफ़ अल क़रज़ावी 16

आरम्भिका 27

क. भारीअत और फ़तवा में परिवर्तन 27

(i) शरीअत के अनुसार फैसला करने की अनिवार्यता 29

(ii) इस्लामी शरीअत शाश्वत है 31

(iii) फतवा में परिवर्तन 31

(iv) मजल्ला अहकामुल अदलीयः के संकलन पर एक दृष्टि 32

(v) विर्धमी लोगों के अनावश्यक तर्क 33

(vi) फतवा में परिवर्तन, प्राचीन और वर्तमान फ़क़ीहों के मत 35

(vii) फ़तवा के परिवर्तन का अर्थ यह नहीं कि प्राचीन फ़िक़्ही भंडार से लाभ न प्राप्त किया जाये 38

ख. फ़तवा परिवर्तन के लिए भारीअत से तर्क 40

1. क़ुरआन से तर्क 40

2. हदीस से तर्क 47

(i) रोज़ा की स्थिति में चुम्बन 47

(ii) क़ुर्बानी के गोश्त का एकत्र करना 49

(iii) एक प्रश्न के भिन्न–भिन्न उत्तर 52

फ़तवा के परिवर्तन में सम्मानित सहाबा का तरीका 54

(i) सद्कतुल फित्र के सम्बन्ध में सहाबा के फ़तवे में परिवर्तन 54
(ii) घोड़े की ज़कात में हज़रत उमर (रज़ि0) के फ़तवे का परिवर्तित होना 56
हमारे युग में फ़तवा के परिवर्तन के कारण 59
स्थान का परिवर्तन 61
(i) गाँव और नगर का अन्तर 62
(ii) दारुल इस्लाम आदि के अनुसार स्थान का परिवर्तन 69
युग का परिवर्तन 74
(i) शराबी के दण्ड में परिवर्तन 76
(ii) अपरहण 86
(iii) नशीली चीज़ों का व्यापार 87
(iv) अनिवार्य वसीअत 88
(v) खुलअ के लिए पति को विवश करना 89
(vi) अचल सम्पत्तियों और विवाह का पंजीकरण 90
परिस्थितियों का परिवर्तन 91
रीति रिवाज का परिवर्तन 100
जानकारी में परिवर्तन 110
(i) जानकारी में परिवर्तन का अर्थ 110
(ii) इमाम शाफई का जानकारी बदलने से फ़तवा बदलना 111
(iii) हमारे युग में जानकारी का परिवर्तन 112
(iv) कुछ व्यक्तिगत अनुभव 112
(v) तथ्यपरक जानकारी का परिवर्तन 114
(vi) गर्भकाल का प्रश्न 115
(vii) पहली का चाँद देखना 118
आवयकताओं का परिवर्तन 121

लोगों की योग्यताओं और संसाधनों का परिवर्तन 128
(i) चिकित्सा पद्धति में विकास के सम्बन्ध में फ़क़ीहों का दृष्टिकोण 128
(ii) संचार माध्यमों का विकास और मनुष्य का रात में घर आना 130
(iii) पति के साथ पत्नी का शहर से स्थानान्तरण 131
उमूम—ए बलवा (सामान्य विपत्ति) 132
(i) नंगे सिर रहना और रास्तों में खाना 132
(ii)दाढ़ी मुड़वाना 132
(iii) टेलीविजन 133
(iv) विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की साझेदारी 134
सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति का परिवर्तन 137
(i) इस्लामी समाज में ग़ैर मुस्लिम 137
(ii) ईसाईयों को उनके समारोहों पर शुभकामनाएँ देना 141
(iii) हज़ के मनासिक (कर्मों) में आसानी की आवश्यकता 141
मत और विचारों का परिवर्तन 145
समापन 149

m m m

प्राकथन

इस्लामी शरीअत की दो मौलिक विशेषताएँ हैं : न्याय और सन्तुलन व स्थायित्व और निरन्तरता, न्याय से तात्पर्य यह है कि वह पूर्ण रूप से मनुष्य और कायनात की प्रकृति के अनुकूल और मानवीय आवश्यकताओं और हितों के अनुकूल है, और प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समूह को न्याय उपलब्ध करता है। निरन्तरता से तात्पर्य यह है कि चूंकि रसूलुल्लाह (सल्ल0) पर नुबूव्वत (रिसालत) का तारतम्य समाप्त हो चुका है; इसलिए अब मानवता को महाप्रलय तक मोहम्मद (सल्ल0) की शरीअत की छत्र–छाया में जीवन व्यतीत करना है।

किसी भी क़ानून के न्याय पर स्थापित रहने के लिए अनिवार्य है कि उसमें स्थायित्व और ठहराव हो, वह मोम की नाक न हो कि लोग जब चाहे और जिधर चाहें उसे घुमा दें, ऐसा क़ानून न्याय और समता पर आधारित व्यवहार उपलब्ध नहीं कर सकता; बल्कि वह सत्ता पर आसीन और शक्तिशाली समूह के अधीन होकर रह जाता है, उसे अपनी इच्छा के अनुसार वस्त्र की तरह बदल डालने की गुंजाइश होती है, और क़ानून में बार–बार के परिवर्तन को पक्षपात और व्यक्तियों और समूहों के साथ अन्याय के लिए प्रयोग किया जाता है। दूसरी तरफ क़ानून की निरन्तरता के लिए यह भी अनिवार्य है कि उसमे एक तरह की लचक हो, वह विभिन्न युगों में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं को स्वीकार करने की योग्यता रखता हो, और इसके अन्दर समसामयिक परिवर्तनों को झेलने की गुंजाइश हो, जो क़ानून पूर्णतः बेलचक और पत्थर की तरह अटल हो वह विभिन्न युगों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर

सकता।

इस्लामी शरीअत में ये दोनो पहलू मौजूद है, क़ुरआन व हदीस में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित ऐसे सिद्धान्त निर्धारित कर दिये गये हैं, जो शरीअत की चारदीवारी की हैसियत रखते हों, इनमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता ये इस्लामी क़ानून के मौलिक सिद्धान्त हैं इनमें परिवर्तन वास्तव में शरीअत के क़ानून से विचलन है, दूसरी तरफ इस्लामी फ़िक़्ह का एक पक्ष वह भी है जो किसी विशेष युग के प्रचलन और हितों पर आधारित है और उसमें समसामयिक परिवर्तनों के अन्तर्गत परिवर्तन को स्वीकार करना स्वयं शरीअत की शिक्षाओं की माँग है; अतः प्रत्येक युग में दूर दृष्टि रखने वाले फ़क़ीहों और गहन ज्ञान रखने वाले उलमा ने इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखा है, इसलिए संसार के एक बड़े भाग – जिसमें एशिया, यूरोप और अफ्रीका सम्मिलित हैं, परन्तु लगभग एक हज़ार वर्ष तक इस्लामी फ़िक़्ह का शासन रहा है, इसकी छत्र–छाया में ज्ञान–विज्ञान और सांस्कृतिक विकास की लम्बी यात्रा तय की गई है और इसके कारण कभी मुसलमानों के ज्ञान–विज्ञान और चिन्तन के विकास में कोई रुकावट पैदा नहीं हुई।

यदि इस बात का विश्लेषण किया जाये कि शरीअत के कौन से आदेश परिवर्तनशील नहीं हैं और कौन से परिवर्तनशील हैं ? तो संभवतः इसका निचोड़ यह होगा कि जिन नियमों की बुनियाद क़ुरआन और हदीस के स्पष्ट आदेशों पर हो, जिनका साक्ष्य विश्वसनीय हो, जो प्रमाण और विश्वसनीयता के उच्च स्तर का वाहक हों और उन प्रमाणों की व्याख्या इतनी स्पष्ट हो कि उनके अर्थ व तात्पर्य में किसी और बात के अर्थ को सम्मिलित होने की गुंजाइश न हो, या जिन आदेशों पर उम्मत का इज्माअ (सर्वसम्मति) हो चुका हो– और यह स्पष्ट है कि

किसी सामूहिक और विश्वसनीय प्रमाण के बिना किसी बात पर मत के समस्त फ़कीहों की सर्वसम्मति नहीं हो सकती– इनमें परिवर्तन की गुंजाइश नहीं, और इनकी हैसियत इस्लामी क़ानून की चारदीवारी की है।

इसकी तुलना में निम्नलिखित स्थितियाँ वह है जिनमें समसामयिक परिवर्तनों के अन्तर्गत क़ानून में परिवर्तन की गुंजाइश होती है; बल्कि कभी–कभी परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है :

(क) : वह क़ानून जिनके सम्बन्ध में कुरआन और हदीस से स्पष्ट प्रमाण मौजूद हो; बल्कि फ़कीहों ने किसी युग या क्षेत्र के हितों के अन्तर्गत उनको अपनाया हो।

(ख) : जो क़ानून युग या क्षेत्र के प्रचलन व रीति–रिवाज पर आधारित हो।

(ग) : कोई शब्द जो कुरआन व हदीस में संक्षिप्त और अस्पष्ट रूप से उल्लेखित हो, उसका अर्थ इस तरह निर्धारित न किया गया हो कि उसमें किसी और अर्थ की गुंजाइश न हो, जैसे क्रय व विक्रय के मामलों में ''कब्ज़ा'' शब्द।

(घ) : जो शब्द अनुमान और शोध पर आधारित हों, जिनके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट आदेश कुरआन व हदीस में उल्लेखित न हो।

(च) : कुरआन व हदीस में कोई आदेश दिया गया हो, परन्तु उस अर्थ की अपने तात्पर्य पर साक्ष्य स्पष्ट न हो, इसमें एक से अधिक अर्थों की सम्भावना हो और उसका जो अर्थ प्राचीन फ़कीहों ने निर्धारित किया है, वह समसामयिक परिवर्तनों के अन्तर्गत व्यवहारिक न हो।

(छ) : जिन आदेशों के सम्बन्ध में हदीसों और रसूलुल्लाह (सल्ल0) के साथियों के व्यवहारों में भिन्नता हो और युग के अनुसार उन दो विभिन्न

आदेशों में कौन पहले लागू हुआ और कौन सा बाद में, इसका निर्धारण करना सम्भव न हो।

(ज) : जिन आदेशों का आधार ऐसी रिवायतें हों, जो विश्वसनीयता के स्तर तक न पहुँची हो और इसलिए कुछ फ़कीहों ने उनको स्वीकार किया हो।

पहले किस्म के आदेशों को कतई (स्पष्ट) और दूसरे किस्म के आदेशों को काल्पनिक या इज्तेहादी कहा जाता है, कतई और इज्तेहादी आदेशों को पहचानने की एक सरल विधि यह है जिस बात पर फ़कीहों की सर्वसम्मति होती है, वह सामान्य रूप से कतई होता है, और जो मसले इज्तेहादी हों, उनमें मतभिन्नता पाई जाती है, यह कोई निर्धारित सिद्धान्त नहीं है; परन्तु फ़िक़्ही भण्डार पर जिन लोगों की दृष्टि होगी, वह इंशा अल्लाह इससे सहमत होंगे।

यह तो वह आदेश और इज्तेहाद हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन को सहन किया जा सकता है; लेकिन प्रश्न यह है कि किन कारणों और कारकों के अन्तर्गत ऐसे परिवर्तन अस्तित्व में आते हैं– यह एक महत्वपूर्ण और नाजुक विषय है, यद्यपि अल्लामा क़राफ़ी, हाफिज़ इब्नुल कय्यिम और अल्लामा इब्ने आबिदीन शामी इत्यादि के मतानुसार आंशिक रूप से यह विषय चर्चा में आया है; परन्तु विस्तृत विश्लेषण पर कम ध्यान दिया गया है।

डा0 यूसुफ अल करज़ावी इस्लामी दुनिया के उच्च स्तर के आलिम हैं, उनकी कुरआन और हदीस पर भी गहरी दृष्टि है और फ़िक़्ह के भण्डार पर भी, इसके अतिरिक्त चूंकि उनके चिन्तन और उसकी अभिव्यक्ति में सन्तुलन भी है, इसके साथ–साथ उनका एक स्पर्धा करने योग्य और प्रशंसनीय गुण उनका धार्मिक और ईमान का स्वाभिमान है,

जिसका अनुमान मुझे व्यक्तिगत रूप से विभिन्न कार्यक्रमों में निकट से उनकी बात सुनने से हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं की अरब दुनिया में–जो पश्चिम की विस्तारवादी शक्तियों के सामने पूर्ण रूप से नतमस्तक हो चुका है–उनका अस्तित्व अत्यन्त सराहनीय है।

शेख यूसुफ अल करज़ावी की विभिन्न पुस्तकें अरब देशों और ग़ैर अरब देशों में लोक प्रशंसा प्राप्त कर चुकी है, जिनमें सबसे पहली *फ़िक़्हुज़्ज़कात* (जकात बोध) है, जो लोग गहन दृष्टि रखते हैं, गहन अध्ययन उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह कुछ मसलों में अपना मत प्रस्तुत करें, मानव चिन्तन में त्रुटि का सन्देह तो होता ही है, इसलिए ऐसे विद्वानों के कुछ मत सामान्य उलमा से भिन्न भी होते हैं, उनके सम्बन्ध में उचित व्यवहार यह है कि उनके मतभेद को अच्छी नीयत का प्रतिफल समझा जाये, उनके संघर्ष और उनके प्रयास की प्रशंसा की जाये और यह मतभेद उनके सम्मान में रुकावट न बन जाये; इस्लामिक फ़िक़्ह ऐकेडमी इस किताब को सैद्धान्तिक और मौलिक वार्ता के रूप में प्रस्तुत कर रही है; ताकि उलमा और फ़तवा देने वाले मुफ्ती इससे लाभ प्राप्त कर सकें।

लेखक ने इस किताब में उन कारकों का विश्लेषण किया है, जो फ़तवा में परिवर्तन का कारण बनते हैं, और कुल मिलाकर दस कारण गिनाये हैं : क्षेत्र और स्थान में परिवर्तन, युग में परिवर्तन, परिस्थितियों में परिवर्तन, प्रचलन (रीति–रिवाज) में परिवर्तन, जानकारी में परिवर्तन, आवश्यकताओं का परिवर्तन, योग्यताओं और सम्भावनाओं का विकास, सामान्य धार्मिक परिवर्तन, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन, मत और चिन्तन का परिवर्तन, इनमें से इस अन्तिम शीर्षक का सम्बन्ध तो इस्तेजाद से है; लेकिन अन्य शीर्षक परिवर्तन के ऐसे कारकों

को स्पष्ट करते हैं, जिनमें इंसान की इच्छा का कोई दखल नहीं है, तथा लेखक का यह विस्तृत वर्णन इस्तेकरा (प्रस्ताव) के रूप में है, इसमें कुछ कारणों की वृद्धि भी हो सकती है, जैसे : सभ्यता में परिवर्तन, आधुनिक यन्त्रों और माध्यमों का विकास इत्यादि; तथापि लेखक का यह विश्लेषण अत्यन्त मूल्यवान और विद्वानों के लिए मार्गदर्शक कहा जा सकता है।

साधारणतः लोग फ़तवों में परिवर्तन के नाम से डर जाते हैं, एक स्वतंन्त्र विचार वाला भटका हुआ व्यक्ति जिसको शरीअत के साथ मज़ाक के लिए प्रयोग करता है तो पारंपरिक समूह के लोग इसे अल्लाह की शरीअत में परिवर्तन समझते हैं, लेखक ने अपनी भूमिका में कुछ फ़तवों में परिवर्तन के उचित होने पर कुरआन और हदीस और रसूलुल्लाह (सल्ल0) के साथियों से भी प्रमाण प्रस्तुत किया है; ताकि मसले का उचित ज्ञान स्पष्ट हो जाये और शंका का समाधान हो सके।

इस तरह वास्तविकता यह है कि यह किताब अपने विषय पर अत्यन्त महत्वपूर्ण और लाभदायक किताब है, उलमा और विशेष रूप से फ़क़्हों और मुफ़्तियों के लिए यह अध्ययन करने योग्य और बहुत रुचिकर किताब है इसलिए ऐकेडमी यह विद्वतापूर्ण उपहार आप तक पहुँचा रही है, दुआ है कि अल्लाह तआला इसको स्वीकार करे और लाभदायक बनाये, और अल्लाह ही है जिससे सहायता माँगी जाती है।

दिनाँक
12 जमादी अल–ऊला 1431 हि0
27 अप्रैल 2010 ई0

खालिद सैफुल्लाह रहमानी
महासचिव
इस्लामिक फ़िक्ह ऐकेडमी,
भारत

ऊर्दू अनुवादक की ओर से दो भाब्द

अल्लामा यूसुफ अल–करज़ावी इस्लामी दुनिया के बड़े उलमा में से हैं, पूर्व और पश्चिम में मुसलमानों के अन्दर जो ख्याति और लोकप्रियता उनको प्राप्त है वह संभवतः वर्तमान युग के किसी अन्य व्यक्तित्व को प्राप्त नहीं, वह अत्यन्त निपुण वक्ता होने के साथ–साथ फ़िक़्ह के ज्ञान के संकलनकर्त्ता भी हैं और अनेक पुस्तकों के लेखक हैं, फ़िक़्ह और फ़तवा से उन्हें विशेष लगाव है।

अल्लामा यूसुफ अल करजावी की अनेक पुस्तकों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होकर प्रकाशन हो चुका है और उनके अनुवादों को भी ऐसे ही लोकप्रियता प्राप्त हुई जैसी मूल अरबी पुस्तकों को प्राप्त हुई, उनकी किताब ''*अल हलाल वल हराम फ़िल इस्लाम*'' व ''फ़िक़्हुज्जकात'' ऐसी पुस्तके हैं जिनको बड़े पैमाने पर पढ़ा गया और पसन्द किया गया।

अल्लामा यूसुफ अल करज़ावी का एक विशेष महत्व यह है कि उन्होंने लगभग सभी आधुनिक मसलों में उम्मत का मार्गदर्शन किया है, ''*फ़िक्हुल अकल्लियात*'' (अल्पसंख्यकों का क़ानून), ''*फ़िक़्हुल अव्वालियात*'', (प्राथमिकताओं की फ़िक़्ह) मकासिदे शरीअत'' (शरीअत के उद्देश्य), आधुनिकतम विषयों पर आधारित किताबे हैं, इनके अतिरिक्त उनके फतवों का संकलन भी कई खण्डों में प्रकाशित हो चुका है, और उसके अनुवाद भी विभिन्न भाषाओं में हुए हैं।

आधुनिक समस्याओं में उम्मत का मार्गदर्शन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। अल्लामा करजावी ने एक और महत्वपूर्ण कार्य यह

किया कि कुछ आधुनिक समस्याओं में प्राचीन फ़तवों में परिवर्तन के जो कारण रहे हैं, उनपर एक विस्तृत पुस्तक लिखी है जिसका अरबी नाम है, *''मोजिबात तग़ईरिल फतवा फी अस्रे ना''*। इस किताब में उन कारकों, परिस्थितियों, युग, संस्कृति और सभ्यता और उद्योग में परिवर्तन की ओर संकेत किया है जिनके कारण फतवा में परिवर्तन हो जाता है।

प्राचीन लेखकों ने साधरणतः ऐसे चार कारणों का उल्लेख किया है जो फतवा पर प्रभावित होते हैं, जबकि इस किताब में लेखक ने ऐसे दस कारणों की ओर संकेत किया है, प्रारम्भ में यह वार्ता है कि फतवा का परिवर्तन कोई धार्मिक विचलन नहीं है बल्कि उसके प्रमाण कुरान और हदीस, रसूलुल्लाह (सल्ल0) के साथियों और हमारे इमामों के यहाँ मिलते हैं, इसके पश्चात उन दस कारणों में से प्रत्येक पर विस्तृत चर्चा की है।

फ़िक़्ह और फतवा में रुचि रखने वाले उलमा के लिए यह एक उत्तम मार्गदर्शक किताब है, इस किताब को ऊर्दू पाठकों तक पहुँचाना इसके लाभप्रद होने के कारण आवश्यक था, इसलिए इसका ऊर्दू अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस्लामिक फ़िक़्ह ऐकेडमी का मैं आभारी हूँ कि उसने इस किताब को प्रकाशित करने का दायित्व स्वीकार किया, आशा है यह किताब ऊर्दू पाठकों में प्रशंसा की दृष्टि से देखी जायेगी।

ऊर्दू अनुवाद में इस बात का पूर्ण प्रयास किया गया है कि अनुवाद शब्दों के निकट रहते हुए किया जाये ऊर्दू वाक्य की बनावट और ऊर्दू की शैली प्रभावित न हो, मैं इस प्रयास में कहाँ तक सफल हो सका ? इसका फैसला पाठक स्वयं करेंगे।

अन्त में इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि इस अनुवाद

के पुनरावलोकन में मेरे प्रिय मित्र भाई खालिद सैफ़ुल्लाह असरी ने मेरी सहायता की, इसके लिए उनका आभार व्यक्त करना आवश्यक है।

मुहम्मद मुश्ताक़ तिजारवी
इस्लामिक स्टडीज़ विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली, 14 मई 2010

भूमिका

बिस्मिल्लाहि र्रहमानि र्रहीम

अलहम्दुलिल्लाह व कफा व सलामुन अला रुसुलिहिल्लज़ीन अस्तफा व अला खातिमेहिम मोहम्मद अल मुज्तबा व अला आलिही वसहबिही अइम्मतुल हदा वमन बिहिम इक्तदा फह्तदा।

सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है और वही हमारे लिए पर्याप्त है, और सलामती हो उसके उन रसूलों पर जिनको अल्लाह ने चुन लिया, और अन्तिम रसूल मुहम्मद मुज्तबा पर, उनकी सन्तान और साथियों (सहाबा) पर और सन्मार्ग पर चलने वाले इमामों पर और उनके अनुयायियों पर जिन्होंने अनुसरण करके संमार्ग प्राप्त किया।

शरीअत उस समय तक व्यक्ति परिवार, समूह और उम्मत के जीवन में लाभदायक नहीं हो सकती और न ही उसके उद्देश्य पूरे हो सकते हैं, जब तक इज्तेहाद को उसके विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न स्तरों पर, उसकी सभी किस्मों अर्थात इज्तेहादे इन्शाई (नवीन इज्तेहाद) या इज्तेहादे इन्तक़ाई (पिछले इज्तेहाद से लाभ प्राप्त करते हुए इज्तेहाद करना), इज्तेहादे मुतलक (पूर्ण) अथवा इज्तेहादे जुजई (आंशिक) और इज्तेहादे इनफिरादी (व्यक्तिगत) या इज्तेहादे इजतिमाई (सामूहिक) के साथ व्यवहार में न लाया जाये।

इज्तेहाद की एक किस्म क़ज़ाई इज्तेहाद है जो क़ाज़ी करता है, विशेष रूप से वह जो इज्तेहाद काल में हुआ। उस समय तक ध ाार्मिक आदेश न तो क़ानून के रूप में संकलित हुए थे, न क़ाज़ियों (न्यायधीशों) पर उनका अनुकरण अनिवार्य था, और न उनपर इज्तेहाद करना मना था, सिवाय उन मसलों के जो तहक़ीक़े मनात (कारणों की

खोज) से सम्बन्धित हो।

इज्तेहाद के रुपों में एक तक़नीन है, अर्थात आदेशों को क़ानूनी अधिनियमों और शीर्षकों के अनुसार संकलित कर देना जैसे पारिवारिक क़ानूनों, सिविल क़ानून, फ़ौजदारी और व्यवस्था तथा राजस्व से सम्बन्धित क़ानून इत्यादि, जैसा कि तुर्की की उस्मानी ख़िलाफ़त ने अपने अन्तिम शासनकाल में ''मजल्लतुल अहकामुल अदलियः'' के नाम से हनफी मत के अनुसार नागरिक क़ानून संकलित किए।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस्लामी फ़िक़्ह के अन्तर्गत आने वाले आदेशों का धारागत संकलन इज्तेहाद के माध्यम से ही सम्भव है; चाहे ये इज्तेहाद पूर्ण हो या आंशिक, इन्शाई (रचनात्मक) हो या इन्तकाई (रचनात्मक)। पारिवारिक क़ानून जिसे पर्सनल लॉ कहते हैं, इसमें ऐसा हुआ भी है। पहले यह इज्तेहाद की प्रक्रिया मात्र हनफी मत के दायरे तक सीमित थी, फिर इसका दायरा विस्तृत किया गया और चारों मतों से लाभ प्राप्त किया जाने लगा, और अब तो इस इज्तेहाद में पूरे फ़िक़्ह के भण्डार से लाभ प्राप्त किया जा रहा है।

मिस्र में शेख मुहम्मद मुस्तफा अल मुराग़ी, जो जामिया अज़हर के प्रोफेसर हैं, ने फ़िक़्ह के आदेशों के क़ानून के रूप में संकलन की आधारशिला रखी, यद्यपि रुढ़िवादी और फ़िक़्ही मतों के पक्षपात की मानसिकता रखने वाले अनुयायियों ने इसका विरोध किया लेकिन जामिया अज़हर के इस प्रोफेसर ने शरीअत की ऐसी दलीलों से उनको उत्तर दिया जिनका इंकार अज्ञानी और पक्षपात करने वाले और घंमडी लोगों के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता।

इज्तेहाद के रुपों में एक ''फ़िक़्ही बहस'' (फ़िक़्ह वार्ता) है। फ़िक़्ह के इमाम अपने ज्ञान–विज्ञान के समूह, शिष्यों और साथियों में

पारस्परिक वार्ता करते रहते थे। इस प्रक्रिया में गौढ़ आदेशों (अथवा क़ानून) को शरीअत से निकालते थे, प्रश्न उठाते थे, या उनसे प्रश्न किये जाते थे और फिर वह क़ुरआन और हदीस और फ़िक़्ह के सिद्धान्तों और नियमों और शरीअत के उद्देश्यों की रोशनी में उनके उत्तर देते थे। बिल्कुल उसी तरह जिस तरह आजकल विश्वविद्यालयों में शिक्षक और उच्च कक्षाओं के छात्र अपने शोध कार्य के दौरान करते हैं, इस आधार पर इज्तेहाद करने वाले किताबें संकलित करते थे।

इज्तेहाद के विभिन्न रुपों में से एक रूप '*फतवा*' भी है। फतवा का व्यवहारिक रूप यह होता है कि जीवन के विभिन्न मामले चाहे व्यक्तिगत हो या सामूहिक अथवा पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित हो, किसी आलिम या मुफ्ती से मौखिक या लिखित रूप से प्रश्न किये जाते हैं, मुफ्ती के लिए अनिवार्य है कि जब उससे पूछा जाये तो वह विस्तारपूर्वक उत्तर दे, विशेष रूप से उस समय जब वहाँ कोई दूसरा उत्तर देने वाला न हो, या फिर वह मुफ्ती सरकार की ओर से नियुक्त किया हुआ हो। मुफ्ती के उत्तर में मौलिक सिद्धान्त यह है कि वह शोध ा और इज्तेहाद के आधार पर होना चाहिए, उसी स्थिति में आदेश मसले की वास्तविकता के अनुसार हो सकेगा इसलिए की आदेश मात्र फर्जी नहीं होता बल्कि वास्तविकता पर आधारित और उससे सम्बन्धित होता है।

फ़िक़्ह के सभी मतों में फतवा की किताबें मौजूद हैं जो ऐसी घटनाओं पर आधारित हैं जिनके सम्बन्ध में साधारण मुसलमानों या प्रशासकों ने प्रश्न किये हैं, और जो फ़िक़्ह के सभी क्षेत्रों पर आधारित होते हैं, और ये फ़िक़्ह के प्रत्येक मत में उस मत के सिद्धान्तों और आदेश और उनके नियम निकालने की विधि पर आधारित हैं। कुछ लोग

उनको ''अहकामुन्नवाज़िल'' भी कहते हैं।

फतवा ऐसे भी हैं जिनमें मुफ्ती सदैव अपने फ़िक़्ही मत की किताबों से ही तर्क नहीं देता बल्कि वास्तविक शरई दलील प्रस्तुत करता है; बल्कि कभी–कभी सभी फ़िक़्ही मतों को छोड़ देता हैं और किसी नबी (सल्ल0) के साथी या उनके उत्तराधिकारी (ताबई) के कथन पर फतवा दे देता हैं। इस प्रकार के फतवे में प्रसिद्ध उदाहरण शेखुल इस्लाम इब्ने तैमिया के फतवे हैं, जो पूर्वी और पश्चिमी देशों में समान रूप से अपनाये गये हैं।

हमारे युग में भी ऐसे फ़क़ीह विद्यमान हैं जो किसी एक फ़िक़्ही मत में सीमित नहीं रहते बल्कि शरीअत की दलीलों से जो बात स्पष्ट होती है उसको बयान कर देते हैं और उसी को वरीयता देने योग्य ठहराते हैं, इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध अल्लामा रशीद रज़ा मिस्री जो कुरआन की टीका *अल मनार* और *जर्नल अल मनार* के लेखक हैं और जो सम्पूर्ण विश्व के मुसलमानों के प्रश्नों के उत्तर अल मनार जर्नल के पन्नों में दिया करते थे, यह जर्नल इस्लामी विश्व में और विशेष रूप से सुधार (इस्लाह) और नवीनीकरण (तज्दीद) का कार्य करने वालों में प्रसिद्ध हुआ।

यह फतवे छः विस्तृत खण्डों में संकलित होकर प्रकाशित हो चुके हैं। इन फतवों की स्पष्ट विशेषताएँ ये हैं कि उनमें शरीअत के उद्देश्यों को सामने रखा गया है, आदेशों को कारणों और हितों से जोड़कर आने वाले मसलों का दूरदृष्टि के साथ समाधान प्रस्तुत किया गया है। वह इससे भिज्ञ थे कि दुनिया में क्या हो रहा है, उन्होंने वास्तव में प्राचीन और वर्तमान में समायोजन किया है, शरीअत का आदेश बयान करने के साथ–साथ उसमें निहित विवेक और उद्देश्यों को इस तरह

प्रस्तुत किया है कि उससे मस्तिष्क और हृदय को सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है।

जामिया अज़हर के एक अन्य प्रोफेसर शेख महमूद शल्तूत के फतवे भी अल्लामा रशीद रजा मिस्री के उसी तरीके पर सामने आये, ये फतवे एक खण्ड में प्रकाशित हुए हैं। इन पंक्तियों का लेखक उन लोगों में से है जिन्होंने उनको विभिन्न बिखरे हुए स्रोतों से निकालकर ठीक–ठाक करके एक पुस्तक के रूप में एकत्र किया है। यह कार्य मैने और मेरे भाई अहमद अल असाल ने प्रोफेसर डा0 मुहम्मद अल–बही जो *सकाफतुल इस्लामिया* अजहर के महानिदेशक हैं के आदेश पर किया।

इस प्रकार के फतवों में शेख मुहम्मद अबू ज़हरा के फतवे भी हैं, वह कुछ पत्रिकाओं विशेष रूप से *लिवाउल इस्लाम* में फतवा दिया करते थे। इन फतवों को शोध और टीका के साथ हमारे भाई शोधकर्त्ता आलिम और आवाहक शेख मज्द मक्की ने एकत्र कर दिया है।

इन्ही फतवों में महान फकीर अल्लामा शेख मुस्तफा अल ज़रक़ा के फतवे भी हैं, इसे भी शोध और टीका के साथ शेख मज्द मक्की ने संकलित किया है। मुझे इस पर प्राकथन लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इस सौभाग्य का अवसर मुझे स्वयं शेख मुस्तफा अल ज़रक़ा ने प्रदान किया।

इसी में वह फतवे भी सम्मिलित है जो इस्लामी दुनिया के विभिन्न देशों में उन मुफ्तियों ने दिये जो सरकार की ओर से फतवा लिखने के लिए नियुक्त थे, जैसे मिस्र के मुफ्तियों जिनमें अनेक बड़े उलमा सम्मिलित हैं जैसे मुफ्ती मुहम्मद अब्दुहू, शेख मोहम्मद बुखैत अल मुतीई, शेख अब्दुल मजीद सलीम, शेख हसनैन मखलूफ़ इत्यादि, मिस्र के उलमा के इन फतवों के बीस से अधिक खण्ड प्रकाशित हो चुके

हैं और आगे का प्रकाशन जारी है।

इस प्रकार के फतवों में जिस चीज़ का सबसे अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है वह है फतवा में परिवर्तन के कारणों को ध्यान में रखना। जिनके सम्बन्ध में शोध करने वाले उम्मत के उलमा के कथन मौजूद हैं। अतः उलमा की लगभग सर्वसम्मति है कि देश और काल और प्रचलन और परिस्थितियों के बदल जाने से फतवा में भी परिवर्तन आवश्यक है। इस पुस्तक में हम इसी पक्ष को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे, हमने आधुनिक काल के मुफ्ती के लिए यह बात अनिवार्य ठहराई है कि वर्तमान काल में जिन कारणों के आधार पर फतवा में परिवर्तन होता है, उसे भी ध्यान में रखे। प्राचीन काल के उलमा ने इन परिवर्तनों के कारण (इल्लत) लिखे थे, हमने वर्तमान युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इसमें कुछ कारणों की वृद्धि की है। प्राचीन उलमा के अनुसार फतवा के परिवर्तन के कारण निम्नलिखित चार हैं :

1. स्थान में परिवर्तन
2. युग में परिवर्तन
3. स्थिति में परिवर्तन
4. प्रचलन में परिवर्तन

हमनें इन चारों के अतिरिक्त छः कारक और कारणों की वृद्धि की है इस तरह हमारी दृष्टि में कारण दस तक पहुँच चुके हैं। अन्य छः इस प्रकार हैं :

1. जानकारी में परिवर्तन
2. लोगों की आवश्यकताओं का बदल जाना
3. लोगों की योग्यता उनकी सम्भावनाओं और संसाधनों का परिवर्तन
4. सामान्य विपत्ति

5. सामूहिक राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों का परिवर्तन
6. मत और चिन्तन में परिवर्तन

इस्लाम में फतवे का एक उच्च स्थान है। इसका मूल्य कम करना वैध नहीं और न ही इसका दायित्व ऐसे व्यक्ति को देना उचित है जो समझ और बुद्धि या धर्म और नैतिकता के अनुसार इसके योग्य न हो। पूर्ववर्ती उलमा ऐसे लोगों से फतवा लेना पसन्द नहीं करते थे जो फतवा देने के योग्य न हो, और यदि कोई अयोग्य व्यक्ति फतवा देता तो उसको कठोरतापूर्वक नापसन्द करते थे।

इमाम शातिबी ने लिखा है कि मुफ्ती शरीअत के आदेश बयान करने में रसूलुल्लाह (सल्ल0) का उत्तराधिकारी है, चूंकि वह भी लोगों को बताता है कि अमुक हलाल है अमुक हराम है[1]। इमाम इब्नुल कय्यिम ने भी मुफ्ती को बहुत महत्व दिया है और उसको अल्लाह तआला की ओर से मुहर लगाने वाले की श्रेणी में रखा है, ठीक उन लोगों की तरह जिन पर इस्लामी युग के खलीफा और अमीर अपने प्रतिनिधि पर मुहर लगाने के लिए विश्वास किया करते थे। इसलिए उन्होंने अपनी किताब का नाम *''एलामुल मूकेईन अन रब्बिल आलमीन''* रखा। बताइये कौन सा पद है जो इस पद के समान हो सकता है ?

अल्लाह तआला की किताब में उल्लेख है कि अल्लाह तआला ने कुछ समस्याओं में अपने बन्दों को स्वयं फ़तवा दिया है। उदाहरण के लिए क़ुरआन मजीद में है :

''ऐ नबी! लोग तुमसे कलालः के बारे में फ़तवा पूछते है, कहो : अल्लाह तुम्हें (क़लाल के बारे में) फतवा देता है।''

(सूरः निसा : 176)

---

1. अल–मुवाफ़िक़ात 244 / 4

''लोग तुमसे औरतों के सम्बन्ध में फ़तवा पूछते हैं, कहो : अल्लाह तुम्हें उनके सम्बन्ध में फतवा देता है।'' (सूरः निसा : 127)

क़ुरआन मजीद में फतवा पूछने का उल्लेख दस से अधिक आयतों में आया है और अल्लाह तआला ने उसका उत्तर शब्द 'क़ुल' (कहो) से लिया है। जैसे :

''पूछते हैं शराब और जुए का क्या आदेश है ? कहो : इन दोनों चीज़ों में बड़ी बुराई है, यद्यपि इनमें लोगों के लिए कुछ लाभ भी हैं, परन्तु इनका पाप उनके लाभ से बहुत अधिक है, पूछते हैं हम अल्लाह के रास्ते में क्या खर्च करें ? कहो : जो कुछ तुम्हारी आवश्यकता से अधिक हो, इस तरह अल्लाह तुम्हे स्पष्ट आदेश बताता है आशा है कि तुम संसार और परलोक दोनों की चिन्ता करो। पूछते हैं यतीमों के साथ क्या व्यवहार किया जाये ? कहो : जिस व्यवहार में उनके लिए भलाई हो वही व्यवहार अपनाना बेहतर है।'' (सूरः बकरः 219–220)

इन आयतों में प्रश्न मोमिनों की ओर से हैं और उत्तर अल्लाह तआला की ओर से। इनसे भी फतवा देने के महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है और मुफ्ती के उच्च पद का भी, चूंकि अल्लाह तआला ने इस शब्द को स्वयं अपने से जोड़ा है इसलिए वह फतवा देने वालों में सबसे महान और आदरणीय है।

यह बात किसी शोधकर्त्ता से छिपी नहीं है कि मात्र मुसलमान ही वह एक मात्र उम्मत है जो अपने धार्मिक आदेश के सम्बन्ध में प्रश्न करती है; ताकि इबादतों में सही और गलत और जीवन के मामलों में हलाल और हराम के बीच भेद कर सके। इनके अतिरिक्त कोई भी ऐसी क़ौम नहीं, न मूर्ति पूजकों में और न उन लोगों में जिनको अल्लाह ने किताब दी थी, जो इसका ध्यान रखती हो। इसके लिए मुस्लिम देशों में

विशेष रूप से इस्लामी खिलाफत में नियमित रूप से फतवा देने वाली संस्थाएँ स्थापित की गईं। इसी तरह कुछ क्षेत्रों में मुफ्ती का नियमित रूप से पद सृजित किया गया, यह पद कुछ देशों जैसे मिस्र कि वहाँ सबसे उच्च पद शेखुल अजहर का होता है, इनके अतिरिक्त हर जगह सबसे महत्वपूर्ण ज्ञान और धर्म का पद समझा जाता है।

शुरुतुल मुफ्ती (मुफ्ती की शर्तें) अदबुल मुफ्ती (मुफ्ती के लिए शिष्टाचार) और अदबुल मुस्तफ्ती (फतवा पूछने वाले के लिए शिष्टाचार) के विषय पर किताबें लिखी गईं और हमारे वर्तमान युग में इस विषय पर सम्मेलन आयोजित किये गये, विशेष रूप से जब से सेटेलाइट का प्रचलन हुआ और ऐसे मुफ्ती चैनलों पर आने लगे जो हर मामले में फतवा दे देते हैं, और एक बार भी यह नहीं कहते कि मुझे मालूम नहीं? या यह कि *इस प्रश्न पर चिन्तन की आवश्यकता है* अथवा *मैं परामर्श करुँगा* इत्यादि। कुछ पूर्ववर्ती उलमा के कथन का उल्लेख किया गया है कि जिस आदमी ने यह कहना छोड़ दिया कि मैं नहीं जानता, उसके जान के लाले पड़ गये[1]।

इसी को ध्यान में रखते हुए हमने अपनी एक किताब पहले *अल–फतवा बैनल इन्ज़िबात वत्तसबीब* के नाम से प्रकाशित किया और अब यह किताब *मोजिबात तगईरिल फतवा फी अस्रे ना* प्रकाशित कर रहे हैं; ताकि स्पष्ट दलील अपनाने, जहाँ तक सम्भव हो सच्चाई और अच्छाई को तलाश करने और वास्तविकता की तलाश में पूरी कोशिश

1. अबू नईम ने 'हुलीयतुल औलिया' में इस कथन का सम्बन्ध सुफ़ियान बिन एनिया (274/7) से जोड़ा है। सिफ़तुल सफवः 232/2 में ऐसा ही लिखा है, अजलूनी ने कशफुल खफा (1981/2) में इस कथन का सम्बन्ध मुहम्मद बिन अजलान से जोड़ा है, और इहयाउल उलूम (69/1) में इस कथन को इब्ने मसूद से नक़ल किया है।

करने में मुफ्तियों की सहायता करे, फिर वह यह दुआ माँगे कि अल्लाह तआला उनको सीधे रास्ते पर क़ायम रखे और उनको सच्चाई का ज्ञान प्रदान करे। कुछ पूर्ववर्ती उलमा से उल्लिखित है कि जब कोई कठिन प्रश्न सामने आये तो कहोः ''ऐ इब्राहीम के शिक्षक मुझे भी सिखा'' और कुरआन में है ''जो व्यक्ति अल्लाह पर ईमान रखता है अल्लाह उसके दिल को मार्गदर्शन प्रदान करता है। (सूरः अल तग़ाबुन : 11)

एक और आयत है : ''जो अल्लाह का दामन मजबूती से थामेगा वह अवश्य सीधा रास्ता पा लेगा।

हदीस में है कि हमको अल्लाह के रसूल ने यह दुआ सिखाई

''ऐ जिब्रील, मीकाईल और इस्राफील के पालनहार, जमीन और आसमान को बनाने वाले, ग़ैब (परोक्ष) और शहादत (प्रत्यक्ष) को जानने वाले! तू अपने बन्दों के बीच सच्चाई के साथ फैसला करता है, जिनमें वह मतभेद रखते हैं मुझे ऐसे मामले में जिसमें मतभेद है अपने आदेश से सच्चा मार्ग प्रदान कर दे, निस्सन्देह तू जिसको चाहता है सीधे रास्ते का मार्गदर्शन कर देता है[1]।''

अन्त में यह कहना चाहता हूँ कि *अल इत्तेहाद अल आलिमी ले उलमाईल मुस्लिमीन* के अनुवाद और संकलन की कमेटी ने मुझसे माँग की कि मैं एक लेख लिखूँ जिससे *अल कज़ाया अल उम्मा* के नाम से लेखों का एक सिलसिला प्रारम्भ हो, मैंने इसके लिए इस लेख को चुना, इस आशा के साथ कि यह लेख साधारण मुसलमानों में सामान्य

---

1. इस हदीस को मुस्लिम ने 'सलातुल मुसाफिरीन (770) में हज़रत आयशा से, इब्ने माजा ने इकामतुस्सलात (1357) में, अबू दाऊद ने सलात (767) में और नसई ने अस्सुननुल क़ुबा में सलात (1324) में और अल मुज्तबा में क़यामुल लैल (1625) में रिवायत किया है।

रूप से और मुस्लिम अल्पसंख्यकों में विशेष रूप से दीन का गहन ज्ञान प्राप्त करने का कारण बनेगा।

अल्लाह ने ही मुझे अच्छे काम करने की क्षमता दी है वही हमारे लिए पर्याप्त है और सबसे अच्छा मददगार है।

अल्लाह का फ़कीर

दिनाँक — यूसुफ अल करज़ावी

रबीऊल आखिर 1428 हि0 — दोहा

मई 2007

आरम्भिका

1. शरीअत और फ़तवा में परिवर्तन
2. फ़तवा में परिवर्तन की शरई दलीलें

भारीअत और फ़तवा में परिवर्तन

हमारा अकीदा (विश्वास) है कि अल्लाह तआला ने इस अन्तिम शरीअत के माध्यम से हमें पुरस्कृत किया है और सम्मानित किया है, यह शरीअत प्रत्येक युग के लिए शरीअत बन चुकी है, इसी तरह यह सम्पूर्ण विश्व की शरीअत है, तथा यह सभी मनुष्यों की शरीअत है, सम्पूर्ण जीवन की शरीअत है, यह व्यक्ति की शरीअत है, परिवार की शरीअत है, समाज की शरीअत है, देश की शरीअत है, सरकार की शरीअत है, और सम्पूर्ण मानवता की शरीअत है।

इस्लाम एक ऐसी शरीअत है जो मनुष्य की बुद्धि, शरीर और आत्मा, उसके सम्बन्धों और भावनाओं और उसके संसार और परलोक, उसके समस्त आपसी लेन–देन पर आधारित है। यह शरीअत सदैव के लिए है, सबके लिए है और सर्वांगीण भी है। युग के अनुसार सदैव के लिए, स्थान के अनुसार सबके लिए और मनुष्य के हितों और सौभाग्य के अनुसार सर्वव्यापी है, उसकी स्थानीय सामान्यता को बयान करते हुए कुरआन में स्पष्ट रूप से कहा गया है :

''ऐ नबी! हमने आपको संसार वालों के लिए दया बनाकर भेजा है'' (सूरः अम्बिया : 107)

और उसकी युग के अनुसार सामान्यता को बयान करते हुए फ़रमाया :

''परन्तु वह अल्लाह के रसूल और नबियों पर मुहर लगाने वाले

अर्थात अन्तिम नबी हैं।'' (अल–अहज़ाब : 40)

और उसकी मानवीय और सामाजिक व्यापकता को स्पष्ट करते हुए यह फ़रमाया गया

''हमने यह किताब तुमपर उतार दी है, जो प्रत्येक बात का साफ–साफ स्पष्टीकरण करने वाली है और सन्मार्ग और दया और शुभ सूचना है आज्ञाकारियों के लिए'' (अन्नहल : 89)

कुरआन मजीद की एक अन्य आयत में है ''पिछले लोगों की उन कहानियों में बुद्धि और विवेक रखने वालों के लिए शिक्षा है, जो कुछ कुरआन में बयान किया जा रहा है ये बनावटी बातें नहीं हैं; बल्कि इससे पहले जो किताबें आयी हुई हैं, उनकी पुष्टि स्वरूप हैं और प्रत्येक वस्तु का विस्तृत विवरण और ईमान लाने वालों के लिए सन्मार्ग और दया हैं।'' (सूरः यूसुफ : 111)

1. भारीअत के अनुसार फैसला करने की अनिवार्यता :

अल्लाह तआला ने हमें इस्लामी शरीअत प्रदान की है यह हमारा सौभाग्य है, इसलिए आवश्यक है कि हम इसके अनुसार फैसले करें। इस्लाम के अनुसार फैसला करना वैकल्पिक नहीं है; बल्कि अल्लाह तआला ने इसको फर्ज़ (कर्त्तव्य) ठहराया है, और इसपर विश्वास रखना ईमान की पूर्णता के लिए आवश्यक है। ईमान और इस्लाम उस समय तक पूर्णता को प्राप्त नहीं होते जबतक कि इस्लामी शरीअत को व्यवहारिक रूप से न अपनाया जाये और उसके आदेशों को स्वीकार न किया जाये।

''किसी ईमान वाले मर्द और ईमान वाली औरत को यह अधिकार नहीं है कि जब अल्लाह और उसके रसूल किसी वाद का निर्णय

कर दें तो फिर उसे अपने उस वाद में स्वयं निर्णय करने का अधिकार प्राप्त रहे और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करे तो वह पूर्ण रूप से भटक गया।'' (सूरः अहजाब : 36)

''ईमान लाने वालों का काम तो यह है कि जब वह अल्लाह और रसूल की तरफ बुलाए जायें ताकि रसूल उनके वाद का फैसला करे तो वह कहें कि हमने सुना और आज्ञापालन किया। (सूरः नूर : 51)

''एक और क़ुरआन की आयत है : ऐ मुहम्मद ! तुम्हारे पालनहार की क़सम ये कभी मोमिन नहीं हो सकते जब तक कि अपने आपसी मतभेदों में ये तुमको फैसला करने वाला न मान लें, फिर जो कुछ तुम फैसला करो उस पर अपने दिलों में भी कोई तंगी महसूस न करें बल्कि पूर्ण रूप से आज्ञाकारी बन जाये।'' (सूरः निसा : 65)

इस आदेश में प्रशासक भी सम्मिलित है, क़ुरआन मजीद में हैं : ''और जो लोग अल्लाह द्वारा उतारे हुए क़ानून के अनुसार फैसला न करे वही क़ाफिर (अवज्ञाकारी) हैं'' (सूरः माइदा : 44)

एक और आयत में हैं : ''और जो लोग अल्लाह द्वारा उतारे हुए क़ानून के अनुसार फैसला न करे वही लोग ज़ालिम (अन्यायी) हैं।''

(सूरः माइदा : 45)

''और जो लोग अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के अनुसार फैसला न करें वहीं लोग फ़ासिक़ (पापी) हैं।'' (सूरः माइदा : 46)

''और जब उनसे कहा जाता है कि आओ उस चीज़ की तरफ जो अल्लाह ने उतारी है और आओ रसूल की तरफ तो उन कपटाचारियों को तुम देखते हो कि ये तुम्हारी ओर आने से कतराते हैं।''

(सूरः निसा : 61)

2. इस्लामी भारीअत भाा□वत है :

इस्लाम चूंकि अन्तिम शरीअत है। प्रत्येक मुसलमान का विश्वास है कि अल्लाह तआला ने जो मार्ग उसके लिए चुन रखा है वह उससे बेहतर मार्ग है जो वह स्वयं अपने लिए चुनता है; क्योंकि उसका ज्ञान सीमित है, उसका स्वार्थ उसपर आच्छादित है और उसके और वास्तविकता के मध्य अनेक पर्दे पड़े हुए हैं, परन्तु अल्लाह तआला अपनी रचनाओं (मखलूक) की आवश्यकताओं से भली–भाँति अवगत है, वह जानता है कि उसके लिए क्या अच्छा है और किस चीज़ से उसका विकास हो सकता है : ''क्या वह नहीं जानेगा जिसने पैदा किया? वह सूक्ष्मदर्शी, ख़बर रखने वाला है।'' (सूरः मुल्क : 14)

अल्लाह तआला मनुष्य के लिए उसके अपने आप से भी अधिक शुभचिन्तक और उसके माँ–बाप से भी अधिक कृपालु है। वह उसको भलाई के अतिरिक्त कोई आदेश नहीं देता और उसको किसी चीज से मना नहीं करता सिवाये उसके जो उसके लिए बुराई है। इसलिए सभी उलमा का मतैक्य है कि शरीअत का उद्देश्य मनुष्यों के संसार और परलोक की भलाई है, और इस्लामी शरीअत में जो निरन्तरता, व्यापकता और लचक है वह उसको प्रत्येक युग और प्रत्येक स्थान के लिए व्यवहारिक बनाती है[1]।

3. फ़तवा में परिवर्तन :

---

1. देखिए हमारी किताब : *''अवामिलुस्सेअः वल मरुनः फिश्शरीयतिल इस्लामियः''*

फ़तवा युग, स्थान, रीति वह परिस्थिति इत्यादि अनेक कारणों से परिवर्तित हो जाता है। यह शोध करने वाले उलमा के मतानुसार स्वीकार्य है। सर्वप्रथम इमाम इब्ने क़य्यिम ने अपनी किताब *'इलामुल मुअकेईन'* में एक अध्याय स्थापित किया है कि फ़तवा युग के परिवर्तन और रीति और परिस्थिति के परिवर्तन से किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है? इस विषय पर उनकी वार्ता तार्किक है जिससे बुद्धि और विवेक को स्पष्टीकारण प्राप्त होता है और दिल सन्तुष्ट हो जाता है। इसको अवश्य देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त *मजल्ला अल अहकामुल अदलियः* जो उस्मानी खिलाफत के अन्तिम दिनों में नागरिक क़ानून का एक पहलू से प्रतिनिधित्व करता है, इसमें फतवा के इस परिवर्तन को भी स्पष्ट किया गया है। कुछ अरब देशों जैसे सीरिया, जार्डन और कुवैत में यह मजल्ला (जर्नल) पिछले दिनों तक लागू था। इस मजल्ला की धारा 39 में लिखा है : ''युग के परिवर्तन से आदेश में परिवर्तन का इन्कार नहीं किया जा सकता।''

4. मजल्ला अहकामुल अदलीयः के संकलन पर एक दृश्टि :

मजल्ला अहकामुल अदलीयः के सम्बन्ध में मेरी कुछ टिप्पणियाँ हैं जिनको मैने अपनी कुछ किताबों में लिखा है[1], इस मजल्ला में कहीं संक्षेप है, कहीं विस्तार हैं और आदेशों से तात्पर्य मात्र इज्तेहादी और काल्पनिक आदेश हैं, अन्तिम (Final) आदेश नहीं है, अधिकतर शरीअत के आदेश––जैसा कि शोधकर्त्ता जानते हैं––कल्पना पर आधारित हैं,

1. देखिये हमारी किताब : ''मदखल लि दिरासतुश्शरईयः'' पृ० 229, मक्तबा वहबः, काहिरा, मुवस्ससतुल रिसालः, लेबनान से प्रकाशित

और काल्पनिक आदेश मात्र वे ही नहीं है जो अनुमान, और जो सुधार और भलाई के उद्देश्य से निकाले गये हों, बल्कि कुछ ऐसे आदेश भी कल्पना पर आधारित होते हैं जो कुरआन और हदीस से निकाले हुये होते हैं। चूंकि प्रमाण या तर्कों के अनुसार कल्पना पर आधारित आदेश भी कुरआन व हदीस के आदेशों के समतुल्य हो सकते हैं; क्योंकि कुरआन के अतिरिक्त अधिकतर प्रमाण काल्पनिक प्रमाणों पर आधारित हैं और अधिकतर प्रमाणों के तर्क काल्पनिक होते हैं; इसलिए उनके बोध ा में मतभेद हैं? जिसके कारण विभिन्न मसलकों (मार्ग) और विचारध ााराओं में मतभेद हैं, इसलिए मेरा विचार है कि उपरोक्त मजल्ले के उस वाक्य को इस तरह होना चाहिए, ''युग के परिवर्तन से कल्पना पर आध ाारित या इज्तेहादी आदेशों के परिवर्तन का इन्कार नहीं किया जा सकता।'' परन्तु मजल्ला में जो वाक्य लिखा गया है वह फिर भी अपर्याप्त रहेगा; क्योंकि मात्र युग के परिवर्तन से ही आदेश परिवर्तित नहीं होते, बल्कि युग के साथ–साथ रीति–रिवाज, स्थान परिस्थिति, आवश्यकता इत्यादि के परिवर्तन से भी आदेश परिवर्तित हो जाते हैं जैसा कि हम आगे वार्ता करेंगे।

5. विधर्मी लोगों के अनाव□क तर्क :

कुछ विर्धमी लोग कहते हैं कि हमारे लिए अधर्मी होना अनिवार्य है, अतः कमाल अतातुर्क और उसके समर्थकों का कहना है कि जीवन परिवर्तनशील और नवीनीकृत होता रहता है और शरीअत अटल और अपरिवर्तनशील है तो कैसे सम्भव है कि हम निरन्तर परिवर्तनशील और सदैव आने वाली नई–नई समस्याओं को एक अटल और अपरिवर्तशील शरीअत के द्वारा हल करें!!

परन्तु ये दोनों तर्क उचित नहीं हैं, चूंकि जीवन पूर्ण रूप से न तो आधुनिकताप्रिय है और न पूर्ण रूप से परिवर्तनशील है; बल्कि जीवन में कहीं ठहराव है कही परिवर्तन है, जीवन में वस्तुएँ परिवर्तित होती रहती हैं; लेकिन उसका मूल स्थायी रहता है। वर्तमान युग में मनुष्य के अन्दर बहुत से परिवर्तन आ गए हैं। मनुष्य के ज्ञान और उसकी बुद्धि बदल गई उसके संसाधनों में परिवर्तन आ गया परन्तु मनुष्य की आत्मा वहीं की वहीं है, बुद्धि और विवेक की प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ वही हैं हाबील और काबिल (मानवता के जनक के दो बेटों का नाम है जिसमे से हाबील अल्लाह का बन्दा था और काबिल स्वार्थी था और काबिल ने ने अपने भाई हाबील की हत्या कर दी थी) का इन्सान दूसरे रूपों के साथ आज भी स्वयं विद्यमान हैं अतः जीवन और मनुष्य में वस्तुएँ तो परिवर्तनशील हैं लेकिन इन दोनों की आत्माएँ अपरिवर्तनशील हैं।

ऐसा ही मामला शरीअत का है, इसमें भी प्रत्येक चीज़ अटल नहीं है बल्कि कुछ चीज़ें अटल हैं और कुछ परिवर्तनशील है, कुछ ऐसी चीज़ें है जिनपर उम्मत के उलमा का मतैक्य है और कुछ ऐसी चीज़ें जिनमें उम्मत के अन्दर विभिन्न मत पाये जाते हैं, इसी में ऐसी चीज़ें भी हैं जिनमें मसलकों और विचारधाराओं के मत और कथन भिन्न हैं। शरीअत में ऐसी मौलिक चीज़ें भी हैं जैसे इबादतों के उसूल, लेन–देन के उसूल वैध और अवैध के उसूल और आपसी मामलों के नियम जिनमें कोई मतभेद नहीं और न कोई सन्देह हैं, और इसी में ऐसी आंशिक भिन्नताएँ हैं जिनमें उलमा का मतभेद है। शोध करने वाले कहते हैं कि उलमा का मतभेद उम्मत के लिए दया है और उनका मतैक्य अन्तिम (Final) और सर्वमान्य तर्क है।

शरीअत में एक दायरा ऐसा है जो अटल और अपरिर्वनशील है।

इसमें इज्तेहाद या शोध किसी भी माध्यम से परिवर्तन नहीं किया जा सकता, यह ऐसी बातों का क्षेत्र है जो अटल और अन्तिम हैं, यह क्षेत्र है तो सीमित परन्तु बहुत ही महत्वपूर्ण है बल्कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह वह भाग है जो उम्मत को दूसरी उम्मतों और धर्मों में विलीन होने से रोकता है, इसलिए हम कहते हैं कि शरीअत चूंकि प्रत्येक युग की समस्याओं का समाधान करती है इसलिए इसमें निरन्तरता का वह तत्व भी पाया जाता है जो इसको प्रत्येक युग और स्थान के अनुकूल बनाता है। शरीअत के इन्हीं तत्वों में से फ़तवा में परिवर्तन भी है।

6. फ़तवा में परिवर्तन, प्राचीन और वर्तमान फ़कीहों के मत :

फ़तवा के परिवर्तन के सम्बन्ध में इमाम क़राफ़ी[1] और इब्ने कय्यिम[2] ने भी लिखा है और बाद के फ़कीहों में से अल्लामा इब्ने आबिदीन शामी ने इस विषय पर एक लेख ''नसरूल अर्फ[3] फीमा बुनिय मिनल अहकाम अलल उर्फ'' में वार्ता की है। वास्तव में यह समस्या ऐसी है जिसपर समस्त उलमा एकमत हैं, और जो भी फ़िक़्ह की किताबों का अध्ययन करेगा, उसको फ़तवा की परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देगी।

हमारी यह वार्ता कि युग के परिवर्तन से आदेश भी परिवर्तित हो जाते हैं, कुछ उलमा के दिलों मे सन्देह उत्पन्न कर सकती है, इसका

---

1. उनकी किताब ''अल फुरुक़'' और ''अल एहकाम फी तमीज़िल फतावा वल अहकाम''।
2. किताब ईलामुल मुकिईन।
3. अल–अर्फ अर्थात सुगन्ध

कारण फ़तवा परिवर्तन के वाक्य से डर है। स्पष्ट रूप से वह इससे डरते हैं कि यह वाक्य कहीं उन लोगों के लिए सहारा न बन जाये जो शरीअत के अटल आदेशों से खिलवाड़ करते हैं और इसके माध्यम से वह अल्लाह तआला के द्वारा हराम की हुई चीजों को हलाल कर दे और हलाल की हुई चीजों को हराम कर दें। अल्लाह तआला द्वारा दिये हुए कर्तव्यों को निरस्त कर ले और जिसकी अल्लाह तआला ने अनुमति नहीं दी उसको वैध करार दे लें।

मैं अपने उन भाईयों को सन्तुष्ट करना चाहता हूँ कि शरीअत के अटल आदेशों में किसी भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। परिवर्तन जिसमें होगा वह मात्र काल्पनिक और इज्तेहादी आदेश हैं। इनमें मतभेद की गुंजाइश है और इनमें युग और स्थान और परिस्थिति के परिवर्तन से परिवर्तन हो सकता है, आदेश का यह परिवर्तन इस्लामी शरीअत की विशेषताओं में से एक है।

हमारे ऐसे विद्वान भाई भी हैं जो कहते हैं कि हमारी प्राचीन फ़िक़्ह की किताबों में प्रत्येक समस्या का समाधान मौजूद है और अब हमकों किसी नये इज्तेहाद या नये फ़तवे की आवश्यकता नहीं है, उनकी जुबान पर एक कहावत लगातार जारी है कि प्राचीन फ़कीहों ने बाद में आने वालों के लिए कोई काम नहीं छोड़ा।

निस्सन्देह हम प्रारम्भिक इमामों और पूर्व फ़कीहों के सम्बन्ध में इस भावना का सम्मान करते हैं, और हम उनके सम्मान में अन्य लोगों से भी आगे हैं, उन इमामों ने हर सम्भव प्रयास किया, अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया और अपने युग स्थान और परिस्थितियों की समस्याओं का समाधान करने के लिए उन्होंने इज्तेहाद का बहुत महान कार्य किया और कोई पल नष्ट नहीं होने दिया। इस प्रकार उन्होंने दीन और धर्म

की रक्षा की और उम्मत की सेवा की, यदि हम उनका अनुसरण करना चाहते हैं तो हमारे लिए उचित यह है कि जिस तरह उन्होंने इज्तेहाद किया हम भी अपने युग स्थान और परिस्थितियों के लिए उसी प्रकार इज्तेहाद करें। यह वास्तव में उनका उचित अनुसरण और वैध अनुकरण होगा बल्कि ऐसा करना ही वास्तव में कार्यविधि में उनका अनुकरण है, उनके अनुकरण का अर्थ मात्र आंशिक बातों में उनका अंधानुकरण नहीं है।

रह गई उनकी यह बात कि उन पूर्वजों ने अपने बाद वालों के लिए कुछ नहीं छोड़ा तो यह बात भी अनुचित है। प्रारम्भिक उलमा ने बाद वाले उलमा के लिए बहुत कुछ छोड़ा है और भलाई इस उम्मत में क़यामत (महाप्रलय) तक शेष रहेगी। हदीस में है : ''मेरी उम्मत की मिसाल बारिश की तरह है मालूम नहीं इसका प्रारम्भ अच्छा है या अन्त''[1]।

रसूलुल्लाह (सल्ल0) के अनेक सहाबियों से सही प्रमाण के साथ रिवायत ''ताएफः मंसूरा'' वाली हदीस है : ''मेरी उम्मत का एक ग़िरोह सदैव सत्य पर क़ायम रहेगा। किसी का विरोध उसको कोई हानि नहीं पहुँचायेगा यहाँ तक कि अल्लाह तआला का आदेश आ पहुँचेगा[2]।''

एक और प्रसिद्ध हदीस है जिसको इमाम अबू दाऊद आदि ने

---

1. इस हदीस की रिवायत ईमाम अहमद ने मुस्नद अहमद (12,327) में हज़रत अनस से किया है, हदीसवेत्ताओ ने लिखा है कि विभिन्न विधियों और प्रमाणों के कारण यह हदीस क़वी (विश्वसनीय प्रमाण वाली) है और सनद इससे हसन है। इमाम तिर्मिज़ी ने इस हदीस को अल–अन्साल (2,868) में नक़ल किया है, और कहा : यह हदीस इस प्रमाण से हसन ग़रीब है, अबू यआल (190/6) ने भी इसको रिवायत किया है।
2. इस हदीस की रिवायत बुख़ारी ने मनाक़िब (3,641) में, मुस्लिम ने इमारः (1037) में, अहमद ने मुस्नद ने (16,932) में मुआविया से रिवायत किया है।

रिवायत किया है : ''अल्लाह तआला इस उम्मत में प्रत्येक सौ वर्ष पर अपना ऐसा बन्दा पैदा करता रहेगा जो उसके लिए दीन (इस्लाम) का नवीनीकरण करेगा।[1]

7. फ़तवा के परिवर्तन का अर्थ यह नहीं कि प्राचीन फ़िक़्ही भण्डार से लाभ न प्राप्त किया जाये :

इज्तेहाद करने वाले इमामों के सम्बन्ध में हमारा मत पूर्णतः स्पष्ट है कि हम शोध विधि में तो उनका अनुसरण करेंगे परन्तु अपनी परिस्थितियों और युग के लिए इस्तेहाद करेंगे जैसा कि उन्होंने अपने युग में किया था। हमारे युग की समस्याओं का समाधान करने के लिए मात्र प्राचीन पुस्तकें पर्याप्त नहीं हैं; हाँ उनसे लाभ लेना आवश्यक है, यह सम्भव नहीं है कि हम उनको समुद्र में फेक दें और फिर नये सिरे से इस कार्य को प्रारम्भ करें।

कुछ महान आवाहकों का यह कथन कि हम प्राचीन फ़िक़्ह को पूर्णतः छोड़कर कुरआन और हदीस की रोशनी में नये सिरे से पूरी फ़िक़्ह का आरम्भ करें, मेरे मत में यह विधि मात्र यह कि लाभदायक नहीं बल्कि असंभव भी है। किसी भी बाद में आने वालों के लिए यह संभव नहीं है कि वह पूर्वजों द्वारा उपलब्ध कराई गई बुनियादों के अतिरिक्त किसी चीज़ पर बुनियाद रखे। हमारे लिए शून्य से प्रारम्भ करना सम्भव नहीं, आज ज्ञान के भण्डार एकत्र हैं, धार्मिक शिक्षाएँ हो

1. इस हदीस की रिवायत अबू दाऊद ने मलाहिम (4,291) में हज़रत अबू हुरैरा से, हाकिम ने मुस्तदरक, किताबुल फतन वल मलाहिम (567/4) में, और तबरानी अवसत (324/6) में अलबानी ने सहीह अलजामेअ (1874) में इस हदीस को सही कहा है।

या सांसारिक, और हर आलिम और शोधकर्त्ता अपने पूर्ववर्त्ती शोधकर्त्ताओं से लाभ प्राप्त करता है, उसमें वृद्धि करता है और उसमें संशोधन करता है।

मैनें दो खण्डों में *'फ़िक़्हु ज्जकात'* के नाम से एक किताब लिखी थी, आप कल्पना कीजिए कि यदि मैं *फ़िक्हु ज्जकात* पर समस्त पूर्ववर्ती लेखकों के मतों को छोड़ देता जिनसे विभिन्न मसलकों (मतों) की किताबें भरी पड़ी हैं और कहता कि मैं मात्र क़ुरआन पढूँगा, हदीस पढूँगा और ईमामों और उनके साथियों और शिष्यों के कथनों की अनदेखी करते हुए शून्य से प्रारम्भ करूँगा तो क्या मेरे लिए इस किताब का लिखना सम्भव होता? यदि होता भी तो वह किताब भी उसी प्रकार अपूर्ण होती जैसा कि प्रत्येक कार्य प्रारम्भ में अपूर्ण होता है।

मैनें इस किताब में चौदह सदियों तक फैली हुई मुस्लिम मिल्लत की बौद्धिक विरासत से लाभ प्राप्त किया और विभिन्न मसलकों और विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न विचारधाराओं के इज्तेहाद और विचारों से भी बहुमूल्य मोतियों को चुना। मेरा प्रयास था कि उस महान पूँजी से ज्ञान प्राप्त करके उसका तुलनात्मक अध्ययन करूँ और किसी को वरीयता देकर अपना लूँ और वास्तव में फ़क़ीह का यही कार्य होता है। हमारे लिए यह संभव नहीं कि हम आधुनिक बातों पर भरोसा करें और प्राचीन को भुला दिया जाये; बल्कि आवश्यक है कि हम आधुनिक विचारों से भी लाभ प्राप्त करे और अपना आधार प्राचीन विचारों पर रखे, इसलिए कि पीढ़ियाँ आपस में मिलकर पूर्ण होती हैं और क़ौमें एक दूसरे से जुड़ी होती हैं, वह एक दूसरे से लाभ प्राप्त करती हैं, और अच्छी पीढ़ी वह है जो पूर्वजों से लाभ प्राप्त करती है।

फ़तवा में परिवर्तन के लिए भारीअत से तर्क

युग, स्थान, परिस्थितियों, नीयत और इरादा और रीति और प्रचलन में परिवर्तन के कारण फ़तवा में परिवर्तन का नियम फ़कीहों ने अपनी ओर से नहीं बनाया बल्कि इसके लिए शरीअत में दलीले हैं जिनकी रोशनी में उन्होंने यह नियम बनाये हैं और इसके शरीअत में दिये गये तर्क निम्नवत हैं :—

1. कुरआन से तर्क : यह बात उल्लेखनीय है कि इब्ने क़य्यिम ने इस नियम के उचित होने पर कुरआन करीम से प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया, इब्ने कय्यिम भी नहीं बल्कि अन्य लेखकों ने भी इसके लिए कुरआन से प्रमाण नहीं लिए।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जो कोई अल्लाह की किताब का गहन अध्ययन करेगा उसको इस महत्वपूर्ण नियम की बुनियाद कुरआन मजीद में मिल जायेगी। उदाहरण के लिए कुरआन की अनेक आयतों के सम्बन्ध में अनेक टीकाकारों ने लिखा है कि यह 'नासिख' (निरस्त करने वाली) हैं और यह 'मन्सूख' (निरस्त करने वाली)।

जबकि वास्तविकता यह है कि न कोई नासिख है न मन्सूख, बल्कि प्रत्येक आयत का एक स्थान (पृष्ठभूमि) है, वह आयत उसी स्थान के लिए है। कुछ आयतों में एक तरफ 'अज़ीमत' (दृढ़ निश्चय) का उल्लेख है और दूसरी तरफ 'रूख्सत' (आसानी) का, यह भी हो सकता है कि इनमें से एक अनिवार्य आदेश बताती हो और दूसरी पंसन्दीदा, या एक आयत कमजोरी की स्थिति के सम्बन्ध में हो और दूसरी आयत

शक्ति और क्षमता की स्थिति के सम्बन्ध में।

इसके लिए कुरआन से हम यह उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

''ऐ नबी! मोमिनों को युद्ध के लिए प्रेरित करो, यदि तुममे से बीस व्यक्ति जमे होंगे, तो वे दो सौ पर प्रभावी होंगे और यदि तुममे से ऐसे सौ होंगे तो वे इन्कार करने वालों में से एक हज़ार पर प्रभावी होंगे क्योंकि वे नासमझ लोग हैं।'' (सूरः अन्फाल : 65)

आगे फ़रमाया :

''अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हल्का कर दिया है और उसे मालूम हुआ कि तुममे कुछ कमजोरी है। तो यदि तुम्हारे सौ आदमी जमे रहने वाले होंगे तो वे दो सौ पर प्रभावी रहेंगे और यदि तुममे ऐसे हज़ार होंगे तो अल्लाह के आदेश से वे दो हज़ार पर प्रभावी रहेंगे। अल्लाह तो उन्हीं लोगों के साथ है जो जमे रहते हैं।'' (सूरः अन्फाल : 66)

इसका अर्थ जैसा कि कुरआन की टीका अलमनार[1] के लेखक ने लिखा है, यह है कि क़ाफिरों के साथ युद्ध में मुसलमानों की संख्या का अनुपात कम से कम दो सौ के अनुपात में सौ और दो हज़ार के मुकाबले में हज़ार होना चाहिए और यह अनुपात कमज़ोरी की स्थिति में रुख्सत (ढ़ील) है।

इन आयतों के अवतरण काल में मुसलमान कमज़ोर थे, वह बद्र के युद्ध का समय था, उनको ठीक से भोजन तक उपलब्ध नहीं था। उनके पास मात्र एक या दो घोड़े थे और वे एक काफ़िले का मुक़ाबला करने निकले थे, युद्ध के लिए तैयार भी नहीं थे और इसके साथ–साथ वह मूर्ति पूजकों की तुलना में एक तिहाई से कम थे; जबकि मूर्तिपूजक

1. कुरआन की व्याख्या अलमनार 90 / 10

पूर्ण रूप से अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित थे।

जब मुसलमानों में ताकत आ गई तो वह 'अज़ीमत (दृढ़ निश्चय) पर अमल करने लगे, जैसा कि अल्लाह तआला ने उनको आदेश दिया था, उन्होंने अपने से दस गुना या उससे भी अधिक लोगों का सामना किया और सफल हुए। रोम और ईरान आदि राज्यों पर उन्होंने उसी प्रकार विजय प्राप्त की और इन सभी विजयों में मुसलमानों के लिए प्रारम्भिक आदर्श सहाबा (रसूलुल्लाह सल्ल0 के साथी) थे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) के युग में भी और बाद में भी।

कुरआन के कुछ टीकाकारों का विचार है कि इन दोनों आयतों में अज़ीमत वाली आयत बाद में आने वाली रुकसत वाली आयत से निरस्त है; क्योंकि इस आयत में कमी को स्पष्ट रूप से बयान किया गया है :

''अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हल्का किया''

परन्तु रुख्सत अज़ीमत का विलोम नहीं है और विशेष रूप से इस स्थान पर जबकि इसका कारण कमजोरी बताया गया है, और नियम है कि किसी चीज़ का आदेश और उसका निरस्त होना एक साथ नहीं होता और न उस आदेश पर अमल करने की क्षमता से पहले होता है। जबकि दोनों आयतें स्पष्ट रूप से एक साथ अवतरित हुई हैं।

इमाम बुखारी ने इब्ने अब्बास से रिवायत किया है कि जब यह आयत अवतरित हुई : ''यदि तुममे से बीस आदमी जमें हों तो वह दो सौ पर प्रभावी होंगे'' तो मुसलमानों को यह बात कठिन प्रतीत हुई कि कोई दस की तुलना में युद्ध से भाग न जाये तो फिर यह बोझ हल्का करने वाली आयत अवतरित हुई : ''अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हल्का कर दिया है और उसे मालूम हुआ कि अभी तुममे कमज़ोरी है तो यदि

तुममे सौ आदमी जमे रहें तो वह दो सौ पर प्रभावी होंगे[1]।''

यह रिवायत निरस्तीकरण के नियम के लिए तर्क नहीं जैसा कि कुछ लोगों का विचार है, सिद्धान्त रूप से निरस्तीकरण का अर्थ यह है कि पहली आयत में जो आदेश दिया गया है उसका सदैव के लिए समाप्त हो जाना और उस पर अमल सदैव के लिए रोक दिया जाना, यद्यपि स्पष्ट है कि पहली आयत या तो अजीमत को बयान करती है या क्षमता की स्थिति के साथ सीमित है, दूसरी आयत कमज़ोरी की स्थिति के साथ बँधी हुई है। इसका अर्थ यह है कि दूसरी आयत ऐसी विशेष स्थिति के लिए है जिस स्थिति के लिए पहली आयत अवतरित नहीं हुई थी और परिस्थितियों के परिवर्तन से फ़तवा के परिवर्तन की यही बुनियाद है। मूर्तिपूजकों की तुलना में धैर्य क्षमा और परहेज आदि की आयतें भी इसी श्रेणी की हैं। जिनके बारे में अनेक टीकाकार कहते हैं कि तलवार वाली आयत से यह निरस्त हो गई हैं हालाँकि इन आयतों की एक विशेष पृष्ठभूमि है और तलवार वाली आयत की पृष्ठभूमि अलग है।

इमाम ज़रकशी ने ''अल बुरहान'' में तलवार वाली आयत के सम्बन्ध में उल्लिेखित निरस्तीकरण के हवाले से एक दूसरा मत स्थापित किया है और उसकी नयी व्याख्या की है, जिसके अनुसार कुरआन की आयत का आदेश निरस्तीकरण में पूर्णतः समाप्त नहीं होता बल्कि वह एक कारण पर आधारित होता है। यदि कारण समाप्त हो जाये तो आदेश पुनः नवीनीकृत हो जाता है और जब कारण पुनः पाया जाये तो आदेश भी पुनः आ जायेगा, उन्होंने इसको निरस्तीकरण की तीसरी

---

1. इस हदीस की रिवायत बुखारी ने अपनी व्याख्या (4653) में, और अबू दाऊद ने अल जिहाद (2646) में इब्ने अब्बास से किया है।

किस्म में बयान किया है, कहते हैं :

''तीसरी किस्म वह है कि किसी कारणवश कोई आदेश दिया गया फिर वह कारण समाप्त हो गया जैसे कमजोरी और कम संख्या कि स्थिति में जमे रहना और अल्लाह से मिलने[1] के इच्छुक लोगों के लिए मुक्ति आदि का आदेश, इसी तरह भलाई का आदेश और बुराई से रोकना और जिहाद आदि का अनिवार्य न होना, फिर ये आदेश उनके अनिवार्य होने से निरस्त हो गये हों, यह वास्तव में निरस्तीकरण नहीं है बल्कि यह निलम्बन (Suspension) है। कुरआन में है : '' अव नुन्सिहा (अथवा हम भुला देते है)। (सूर बकरः : 106)

इसमें युद्ध का आदेश निलम्बित किया गया है, उस समय तक जब तक मुसलमान शक्तिशाली न हो जाये, यह निरस्तीकरण नहीं बल्कि निलम्बन है, कमज़ोरी की स्थिति में कष्ट पर धैर्य रखने के कर्तव्य का आदेश लागू होगा।

इमाम जरक़शी फ़रमाते हैं कि इस शोध से बहुत से कुरआन के टीकाकारों की इस बात की कमज़ोरी स्पष्ट हो गई जो फ़रमाते हैं कि हल्का करने वाली आयत तलवार वाली आयत से निरस्त है। वास्तविकता यह है कि यह बात उचित नहीं; बल्कि उचित बात यह है कि यह निलम्बन के आदेश में से है इस अर्थ में कि जो आदेश किसी कारणवश

---

1. इस वाक्य में सूरः जासिया की आयत संख्या 14 की ओर संकेत है : ''ऐ नबी ईमान वालों से कह दो कि जो अल्लाह की ओर से बुरे दिन आने का कोई भय नहीं रखते उनकी करतूतों पर क्षमा करे ताकि इसके परिणामस्वरूप उन लोगो को उनकी अपनी कमाई का बदला दे (सूरः जासिया : 14), इस आयत में अल्लाह के दिन लिखा है अल्लाह से मुलाक़ात नहीं लिखा है, दूसरी बात यह है कि जरक़शी के वाक्य में नहीं शब्द है संभवतः छपाई की ग़लती के कारण छूट गया।

2. यह भी विश्वसनीय किराअतों (उच्चारणों) में से एक उच्चारण है।

हो तो यदि कारण पाया जायेगा तो उस आदेश पर भी अमल करना अनिवार्य होगा, और यदि कारण परिवर्तित हो जाये तो वह आदेश भी दूसरे आदेश में परिवर्तित हो जायेगा। यह निरस्तीकरण नहीं है, निरस्तीकरण का अर्थ है आदेश का सदैव के लिए समाप्त हो जाना जिससे इसपर अमल करना कभी वैध न रहे, इसकी तरफ इमाम शाफई ने *अल–रिसालः* में संकेत किया है कि प्रारम्भ में कुर्बानी के गोश्त को एकत्र करने की मनाही का आदेश 'दाफतन'[1] (मदीने में बाहर से आने वालों) के कारण दिया गया था। फिर एकत्र करने की अनुमति दे दी गयी परन्तु पूर्व आदेश निरस्त नहीं किया गया बल्कि कारण के समाप्त हो जाने से आदेश समाप्त हो गया। यदि ऐसे जरूरतमंद फिर किसी बस्ती में आ जायें जिनके आने पर कुर्बानी के गोश्त को एकत्र करने से मना किया गया था तो मनाही फिर लौट आयेगी।

अल्लाह तआला का कथन है : ''ऐ लोगो जो ईमान लाये हो अपनी चिन्ता करो'' (सूरः माइदा : 105) भी इसी श्रेणी में है। यह आदेश भी इस्लाम के प्रारम्भिक युग में था[2]। जब परस्थितियाँ स्थिर हो गई तो 'भलाई का आदेश और बुराई से रोकने का आदेश' और काफिरों से युद्ध अनिवार्य हो गया। फिर यदि इस्लाम पुनः कमजोर हो जाये जैसा कि हदीस में है : ''इस्लाम अजनबी की स्थिति में प्रारम्भ हुआ और फिर अजनबी हो जायेगा''[1] तो पूर्व आदेश लौट आयेगा। हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''जब तुम देखो कि मनोकामनाओं

---

1. मूल प्रति में राफतन लिखा हुआ है यह संभवतः लिखने की गलती है, सही दाफतन है और वह उन लोगों को कहा गया जो मदीने में बाहर से आये थे।
2. यह बात स्वीकार करने योग्य नहीं है, चूंकि सूरः माइदः उन सूरतों में से है जो अन्त में अवतरित हुई। इसलिए इस आदेश को यह समझना कि प्रारम्भ में अवतरित हुआ था उचित नहीं है।

का अनुसरण किया जा रहा हो, इच्छाओं का अनुकरण हो रहा हो और प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार को पसंद करता हों तो फिर तुम्हारे लिए आवश्यक है कि तुम अपने आप का ध्यान रखो।''[2]

अल्लाह तआला विवेकशील है, उसने कमज़ोरी की स्थिति में नबी (सल्ल0) और उनके अनुयायियों के साथ दया और कृपा करते हुए यह आदेश अवतरित किया जो उस परिस्थिति के अनुकूल था, इसलिए कि यदि कमज़ोरी की स्थिति में जेहाद अनिवार्य हो जाता तो बहुत कठिनाई का सामना होता। जब अल्लाह तआला ने इस्लाम को सम्मान प्रदान किया, उसको प्रभावी बनाया और सहायता की तो फिर अल्लाह तआला ने वह आदेश भी अवतरित किया जो उस स्थिति के अनुकूल था, अर्थात काफिरों से इस्लाम स्वीकार करने की माँग, या यदि किताब वाले अर्थात ईसाई और यहूदी हों तो उनसे ज़जिया की माँग, और यदि किताब वाले न हो तो उनसे युद्ध आदि।

ये दोनों आदेश अर्थात कमज़ोरी की स्थिति में आपसी समझौता और क्षमता होने पर तलवार का प्रयोग, कारण के लौट आने से लौट आयेंगे। अर्थात तलवार के प्रयोग का आदेश आपसी समझौते के आदेश

---

1. इस हदीस की रिवायत मुस्लिम ने ईमान (145) में, इब्ने माजा ने फतन (3986) में हज़रत अबू हुरैरा से की है।
2. इस हदीस की रिवायत अबू दाऊद ने अल—मलाहिम (4341) में, तिर्मिज़ी तफ्सीर (3058) में की है। तिर्मिजी ने इसको हसन गरीब कहा है। इब्ने माजा ने फतन (4014) में, इब्ने हिब्बान ने अल—बिर्र वल एहसान (108) में, तिबरानी कबीर 220/22 में, हाकिम ने रिक़ाक़ (358/4) में इसको रिवायत किया है, हाकिम ने इसके प्रमाण को सही बताया है और जहबी ने इसका समर्थन किया है। बैहकी ने सुननुल कुब्रा के अध्याय आदाबुल क़ाज़ी (91/10) में इब्ने सअलबः अल खशनी से रिवायत किया। अलबानी ने अध्याय जईफ, अबू दाऊद 934 में इसको जईफ ठहराया है।

को निरस्त करने वाला नहीं है बल्कि प्रत्येक का एक स्थान है और उसी स्थान पर उस पर अमल करना आवश्यक है[1] अल्लामा सुयूती ने भी *इंतक़ान*[2] में यह वार्ता की है; हाँ रीति के अनुसार उसकी तरफ संकेत नहीं किया कि उन्होंने यह बात जरकशी से लिया था।

2. हदीस से तर्क :

नबी (सल्ल0) की सुन्नत (हदीस) में जो गहन विचार करेगा उसको भी इसकी आत्मा और तर्क मिल जायेगा कि परिस्थितियों के परिवर्तन से फतवा बदल जाता है, इसके अनेक साक्ष्य हदीस और नबी (सल्ल0) की जीवनी की किताबों में विद्यमान हैं :

क. रोज़ा की स्थिति में चुम्बन :–

हाफिज़ इब्ने हजर ने *अत्तलखीसुल हबीर*[3] में इस सम्बन्ध में उस हदीस की तरफ संकेत किया है जिसे अबू दाऊद ने अबू हुरैरा से रिवायत की है : ''एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल0) से पूछा कि रोज़ा रखने वाला अपनी पत्नी को चूम सकता है या नहीं? तो आप (सल्ल0) ने उसको अनुमति दे दी। फिर एक दूसरा व्यक्ति आया उसने भी यही प्रश्न किया तो आप (सल्ल०) ने उसको मना कर दिया। जिसको आपने अनुमति दी थी वह बूढ़ा आदमी था और जिसको मना किया वह जवान आदमी था''[1]

इस हदीस का प्रमाण कमज़ोर है और इतने महत्वपूर्ण नियम को सिद्ध करने के लिए इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हाँ इस

---

1. देखिये : अल बुरहान फी उलूमिल कुरआन; जरक़शी (पृ० 42–43/2), ईसा अल–हिलमी से प्रकाशित, शोध अबुल फ़ज़्ल इब्राहीम।
2. इत्तकान 61/3
3. देखिये पृ० 87/4, टीका सैयद अब्दुल्लाह हाशिम अल यमानी

हदीस का एक गवाह मौजूद है जिससे इसकी पुष्टि होती है। इमाम अहमद ने अपनी *मुस्नद* में अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस से रिवायत किया है : ''हम अल्लाह के रसूल (सल्ल0) के पास थे कि एक जवान आया और उसने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मैं रोज़े की स्थिति में अपनी पत्नी को चूम सकता हूँ? आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया नहीं, फिर एक बूढ़ा आदमी आया उसने भी यही प्रश्न किया कि क्या मैं रोज़ा कि स्थिति में चुम्बन कर सकता हूँ। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया हाँ। हमने यह उत्तर सुनकर एक–दूसरे की तरफ देखा, आप (सल्ल0) ने फ़रमाया कि मैं तुम्हारी नजरों का प्रश्न समझ रहा हूँ, यह बूढ़ा आदमी अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण रख सकता है''[2]

---

1. इस हदीस की रिवायत अबू दाऊद ने अस्सौम (2387) में हज़रत अबू हुरैरा से किया है, अलबानी ने सहीह अबू दाऊद (2090) में इसको हसन सहीह कहा है।
2. इस हदीस की रिवायत अहमद (138) में की है, इसकी पड़ताल करने वालों ने लिखा है कि इसका प्रमाण सही है। इमाम मुस्लिम की शर्त पर है। इसकी रिवायत करने वाले विश्वसनीय है और बुख़ारी और मुस्लिम के भी रिवायत करने वाले हैं सिवाय अब्दुल मलिक बिन सईद अंसारी के कि वह मुस्लिम के रिवायत करने वालों में से हैं। अबू दाऊद ने इस हदीस को सौम (2358) में और इब्ने हिब्बान ने सौम (3544) में रिवायत किया है, इमाम अहमद ने इस हदीस को इस तरह भी बयान किया है कि अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस से रिवायत है ''हम रसूल्लुलाह (सल्ल0) के पास बैठे थे कि एक जवान आदमी आया और उसने पूछा कि क्या रोज़े की स्थिति में चुम्बन कर सकता हूँ। आप (सल्ल0) ने मना किया फिर एक बूढ़ा आया उसने यही प्रश्न पूछा तो आपने अनुमति दे दी। हमको आश्चर्य हुआ तो आप (सल्ल0) ने फ़रमाया कि बूढ़े को अपने आप पर नियन्त्रण होता है'' मुस्नद अहमद (7639), हदीसवेत्ताओं ने लिखा है कि इसका प्रमाण कमज़ोर है। शेख शाकिर ने लिखा है कि यद्यपि इसमें इब्ने लहीअः हैं लेकिन इसका प्रमाण सही है। अल–बानी ने अस्सहीहः में इसको सही बताया है। (1606) देखिये हमारी किताब फिक्हुसयाम। पृ० 89

ख. कुर्बानी के गो�त का एकत्र करना : इस महत्वपूर्ण नियम (अर्थात फ़तवा का परिवर्तन) का आधार मात्र उपरोक्त हदीसों पर नहीं है बल्कि और भी बहुत सी सही हदीसें हैं जिनसे इस सम्बन्ध में तर्क दिया जा सकता है। जैसे सलमा बिन अल अकूअ की हदीस को इमाम बुखारी आदि ने रिवायत किया है। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया : '' तुममे से जो कुर्बानी करे तो तीन दिन के पश्चात ऐसा न हो कि उस गोश्त में से कुछ भी घर में शेष रहे'', जब अगले वर्ष कुर्बानी के दिन आये तो लोगों ने पूछा कि क्या अब भी हम वैसा ही करें जैसा कि पिछले साल किया था। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''खाओ–खिलाओं और एकत्र करो मैने यह आदेश इसलिए दिया था, कि पिछला वर्ष लोगों के लिए कठिन वर्ष था, इसलिए मैंने चाहा कि तुम दूसरे लोगों की सहायता करो''[1]।

दूसरी रिवायतों में है : ''मैने इसलिए मना किया था कि उस समय मदीने में बहुत से लोग आ गये थे अर्थात मदीने के बाहर से बहुत लोग आ गये थे[2]।''

इसका अर्थ यह है कि नबी (सल्ल0) ने गोश्त को तीन दिन के बाद भी घर में रखने से एक विशेष परिस्थिति में और आपात स्थिति के कारण मना किया था, अर्थात इसलिए कि मदीने में बाहर से बहुत से

---

1. इस हदीस की रिवायत बुख़ारी ने अज़ाही (5569) में मुस्लिम ने अज़ाही (2974) में सलमा बिन अकूअ से की है।
2. इस हदीस की रिवायत मुस्लिम ने अज़ाही (1971) में अबू दाऊद ने जहाया (2012) में, नसई ने जहाया (4505) में, और मुज़्तवा (4431) में हज़रत आयशा से किया है।

लोग आ गए थे; इसलिए उस वर्ष अतिथियों के सत्कार और अपने भाइयों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुर्बानी का गोश्त उनके लिए उपलब्ध करना अनिवार्य था, जब यह परिस्थिति समाप्त हो गई और यह आपात स्थिति शेष नहीं रही तो वह आदेश समाप्त हो गया जो उस समय आप (सल्ल0) ने दिया था, इसलिए कि तर्कशास्त्र का नियम है कि जिसके लिए तर्क दिया जाये वह प्रत्यक्ष और परोक्ष में कारण के अधीन होता है। जब कारण शेष न रहा तो आप (सल्ल0) ने अपने फतवे को भी मनाही से अनुमति की ओर बदल दिया। इसलिए आप (सल्ल0) ने बाद में गोश्त के भण्डारण की अनुमति को हदीसों में स्पष्ट किया। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''मैने तुमको कुर्बानी का गोश्त एकत्र करने से मना किया था। तो अब खाओं खिलाओं और भण्डारण करो''।[1] परिस्थितियों के परिवर्तन से फ़तवे के परिवर्तन का यह स्पष्ट उदाहरण है, अधिकतर फ़कीह यह कहते हैं कि यह हदीस पिछली हदीसों को निरस्त करती है और इस हदीस को निरस्तीकरण के उदाहरण के रूप में बयान करते हैं। जैसे वह हदीस है : ''मैने तुमकों कब्रों पर जाने से मना किया था तो तुम अब उनकी ज़ियारत करो''[2]।

वास्तविकता यह है कि यह निरस्तीकरण का उदाहरण नहीं है बल्कि कारण के समाप्त हो जाने से आदेश के लौट आने का उदाहरण है। जैसा कि इमाम शाफई ने *अल–रिसालः* के अध्याय अल ईलल फ़िल हदीस के अन्त में संकेत करते हुए लिखा है। उन्होंने कुर्बानी का गोश्त

1. इस हदीस की तखरीज़ (जाँच पड़ताल) पिछले पृष्ठों में आ चुकी है।
2. मुस्लिम (977) ने बुरैदा से अबू दाऊद ने (3235), नसई ने सुननुल कुब्रा (2170) में और अल–मुज्तबा (2032), में सबने किताबुल जनाएज़ में इस हदीस को रिवायत किया है।

भण्डारकण करने को बाहर के लोगों को मदीने में आ जाने से जोड़ा है।

इमाम कर्तबी ने अपनी क़ुरआन की व्याख्या में स्पष्ट किया है कि यह निरस्तीकरण नहीं है बल्कि कारण के लौट आने से आदेश के लौट आने का उदाहरण है, निरस्त होने का नहीं। इसके बाद उन्होंने निरस्तीकरण के माध्यम और कारण के लौट आने से आदेश के लौट आने के बीच भेद किया है, निरस्तीकरण के माध्यम से उठाये गये आदेश पर अमल कभी नहीं हो सकता, और यदि कारण के समापन से आदेश समाप्त हो गया तो कारण के पुनः आ जाने के माध्यम से वह आदेश भी लौट आएगा। उदाहरण के लिए यदि किसी नगर में कुर्बानी के समय जरूरतमंद लोग आ जायें और उनकी भूख मिटाने के लिए कुर्बानी के गोश्त के अतिरिक्त कुछ न हो तो उनके लिए अनिवार्य हो जायेगा कि कुर्बानी का गोश्त तीन दिन से अधिक घर में न रखें जैसा कि आप (सल्ल0) ने आदेश दिया था[1]।

निरस्तीकरण के समर्थकों को यहाँ हज़रत अली (रज़ि0) के मत के स्पष्टीकरण में कठिनाई का सामना करना पड़ता है; यहाँ तक कि कुछ लोगों ने कहा कि संभवतः उन तक निरस्तीकरण की रिवायत न पहुँची हो, परन्तु इमाम अहमद की रिवायत से अनुमान होता है कि उन तक रुख्सत और अजीमत दोनों बाते पहुँच गई थीं। वरीयता प्राप्त कथन यही है कि आप (सल्ल0) ने यह बात उस वक्त कही थी जब लोग कठिनाई और आवश्यकता में थे, इब्ने हज्म का भी यही मत है जैसा कि इब्ने हज़र ने फ़तहुल बारी में लिखा है।

हाफ़िज इब्ने हजर ने लिखा है कि तीन दिन की सीमा लगाना

1. तफ्सीर कर्तबी 47—48 / 12

एक विशेष घटना है, इसलिए की यदि सबको एक ही दिन में बाँटे बिना आवश्यकता की पूर्ति न हो रही हो तो एक रात के लिए भी गोश्त का भण्डारण करना वैध न होगा[1]।

यहाँ पर साक्ष्य यह है कि रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने एक परिस्थिति में कुर्बानी के गोश्त को भण्डारण करने की मनाही का फ़तवा दिया था फिर जब वह परिस्थितियाँ बदल गईं तो उसको बदल करके भण्डारण करने की अनुमति दे दी आपका यह अमल उस नियम की सत्यता का स्पष्ट प्रमाण है जिसे इब्ने कय्यिम ने भी अपनाया है।

ग. एक प्र□न के भिन्न–भिन्न उत्तर : इससे भी अधिक प्रसिद्ध विचार यह है कि रसूलुल्लाह (सल्ल0) प्रश्नकर्त्ताओं की परिस्थितियों के भिन्न होने के अनुसार एक ही प्रश्न के भिन्न उत्तर देते थे। आप (सल्ल0) प्रत्येक के प्रश्न का उसकी परिस्थतियों के अनुसार उपयुक्त उत्तर देते थे और यदि किसी के अन्दर कोई कमी होती तो उसका सुधार करते।

उदाहरण के लिए आप (सल्ल0) से एक व्यक्ति ने एक व्यापक वसीयत करने की प्रार्थना की तो आप (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''गुस्सा मत करो[2]।'' दूसरे से कहा, ''कहो मैं ईमान लाया अल्लाह पर, फिर उस पर जम जाओ[3]।''

---

1. फतहुल बारी 120–125 / 12 अलहिलमी प्रकाशन
2. इस रिवायत को बुख़ारी ने अल अदब (6,116) में, अहमद (8,744) में, तिर्मिजी ने अल बिर्र वस्सिले (2020) में हज़रत अबू हुरैरा से की है।
3. इस हदीस को मुस्लिम ने ईमान (38) में, अहमद (15,416) में हज़रत सुफियान बिन अब्दुल्लाह अल–सकफ़ी से रिवायत किया है

आप (सल्ल0) प्रत्येक मनुष्य के लिए वह औषधि बताते जिसमें देखते कि वह उसकी बीमारी के लिए अधिक प्रभावकारी होती और उसकी समस्या के निराकरण के लिए अधिक उपयुक्त होती।

इसी प्रकार एक रिवायत बुखारी में अबू हुरैरा से की गई है : ''रसूलुल्लाह (सल्ल0) से पूछा गया कि सबसे श्रेष्ठ कर्म क्या है? या सबसे उपयुक्त कर्म कौन सा है? आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया कि अल्लाह और रसूल पर विश्वास व्यक्त करना, पूछा गया कि फिर क्या है आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया कि जेहाद जो कि कर्म की जड़ है। फिर पूछा गया कि फिर क्या है? आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया कि स्वीकृत हज[1]। इसमें अल्लाह के रास्ते में जेहाद को अल्लाह पर ईमान लाने के पश्चात सबसे अच्छा कर्म बताया गया है। इस प्रकार की और भी अनेक हदीसें हैं कि आपने विभिन्न प्रश्नकर्त्ताओं को बताया कि जेहाद के समान कोई अन्य कर्म नहीं है सिवाय इसके कि किसी के अन्दर सम्पूर्ण जीवन बिना खाये रोजा रखने की या सारी रात बिना सोये रात की नमाज पढ़ने की क्षमता हो।

परन्तु बुख़ारी में ही हज़रत आयशा (रज़ि0) से रिवायत किया गया है :

''उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! हम समझते हैं कि सबसे श्रेष्ठ कर्म जेहाद है आपने उत्तर दिया लेकिन (तुम महिलाओं के लिए) सबसे श्रेष्ठ जेहाद तो स्वीकृत हज है[2]।'' तो यह सम्बोधन

---

1. यह हदीस सर्वसम्मत है, बुख़ारी ने ईमान (26) में, मुस्लिम ने ईमान (83) अहमद ने (9038) में, तिर्मिजी ने फ़जाइलुल ज़िहाद (1658) में हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत किया है और शब्द तिर्मिजी के हैं। नसई ने ईमान व शराएअ (4985) में।
2. बुखारी ने अल हज (1520) में हज़रत आयशा से रिवायत किया है।

महिलाओं से है और अधिकतर हदीसवेत्ताओं ने इसका तात्पर्य महिलाओं से लिया है। परन्तु इस हदीस को अन्य मात्राओं के साथ पढ़ें, जैसा कि कुछ हदीसवेत्ताओं ने पढ़ा है तो इसके तात्पर्य में मर्द भी सम्मिलित हो जायेंगे अर्थात यह हदीस पिछली हदीस में संशोधन करती है, फिर भी इससे तात्पर्य तो एक ही होगा अर्थात जेहाद यद्यपि सबसे श्रेष्ठ कर्म है परन्तु यह मर्दों के लिए है, महिलाओं के लिए सबसे अच्छा कर्म स्वीकृत हज है। अतः प्रश्न महिला ने किया तो आप (सल्ल0) का फतवा परिवर्तित हो गया, इसलिए कि हथियार उठाना मौलिक रूप से पुरुषों का काम है, यह सब और इसके अतिरिक्त अनेक हदीसे इस बात की मूल हैं कि प्रश्नकर्त्ताओं की परिस्थितियों में परिवर्तन से उत्तर या फतवा भी परिवर्तित हो जाता है, तो युग और स्थान के परिवर्तन से फतवा में परिवर्तन का इससे अधिक श्रेणी में प्रमाण मिलता है।

3. फतवा के परिवर्तन में सम्मानित सहाबा का तरीका :

रसूलुल्लाह (सल्ल0) के साथियों और रसूलुल्लाह (सल्ल0) के पद चिन्हों पर खिलाफत का दायित्व निर्वाह करने वाले चार खलीफा (खुलफ़ा—ए राशिदीन) के जीवन के अध्ययन से पता चलता है कि फतवा के परिवर्तन के नियम को वह लोग सबसे अधिक समझने और प्रयोग करने वाले थे, इसके अनेक उदाहरण शरीअत के अनेक स्त्रोतों में मौजूद हैं।

क. सद्कतुल फ़ित्र के सम्बन्ध में सहाबा के फतवे में परिवर्तन : सम्मानित सहाबा के युग में कारण के परिवर्तन से फतवा में परिवर्तन का एक उदाहरण हम ज़कात के अध्याय से लेते हैं।

रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने सद्कतुल फ़ित्र (ईद की नमाज़ से पहले किया जाने वाला दान) खाने के खजूर, किशमिश, जौ या पनीर में से एक *साअ* (वजन नापने की अरब इकाई) निर्धारित किया है। जैसा कि हदीसों से प्रमाणित है[1], परन्तु यह बात सहाबा से प्रमाणित है कि उन्होंने अपने युग में गेहूँ का आधा साअ निर्धारित किया जो खजूर या जौ के एक साअ के बराबर था और उन्होंने सद्कतुल फित्र आधा साअ गेहूँ निकाला।

इब्नुल मुंजिर ने लिखा है कि हमको गेहूँ के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय हदीस मालूम नहीं है और उस समय मदीना में गेहूँ का उपयोग भी बहुत कम था। जब सहाबा के युग में इसका प्रयोग सामान्य रूप से हो गया तो गेहूँ के आधा साअ को एक साअ जौ के बराबर स्वीकार कर लिया गया[2]।

फिर इब्नुल मुंजिर ने हज़रत उस्मान, अली, अबू हुरैरा, जाबिर, इब्ने अब्बास, इब्ने ज़ुबैर (रज़ि0) और उनकी माँ हज़रत अबू बक्र की पुत्री से रिवायत किया है कि वह लोग सद्कतुल फित्र में आधा साअ गेहूँ को एक साअ जौ के बराबर मानते थे।

एक समूह ने हज़रत अबू सईद खुदरी से रिवायत किया है :

''हम रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग में एक साअ खाना या एक साअ खजूर या एक साअ जौ या एक साअ किशमिश या एक साअ

---

1. इब्ने उमर की हदीस है ''रमजान में सदकतुल फित्र एक साअ ख़जूर या एक साअ जौ प्रत्येक मुसलमान पर अनिवार्य है।'' बुख़ारी (1504) मुस्लिम (684) अबू दाऊद (161) तिर्मिज़ी (676) नसई (2503) इब्ने माजा (1826) सबने किताबुज्जकात में रिवायत किया है।
2. देखिये हमारी किताब फिक्हुज्जकात (935–36 / 2)

पनीर निकालते थे। हज़रत अमीर मुआविया के मदीना आने तक यही करते रहे, उन्होंने फ़रमाया कि मेरे विचार में सीरियाई गेहूँ के दो पैमाने अर्थात आधा साअ, एक साअ खजूर के बराबर हैं लोगों ने फिर इस विचार को अपना लिया[1]।''

वे सम्मानित सहाबा जिनका उल्लेख इब्नुल मुंजिर ने किया है उनके अतिरिक्त अमीर मुआविया और उनके समर्थकों ने आधा साअ गेहूँ निकालने को वैध ठहराया जबकि कुरआन और हदीस के प्रमाण से प्रमाणित एक साअ था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि गेहूँ का मूल्य अन्य अनाजों की तुलना में अधिक है तो आधा साअ गेहूँ निकालने की अनुमति दे दी, यह नियम मूल्य में अन्तर से लेन–देन में अन्तर की श्रेणी से है।

ख. घोड़े की ज़कात में हज़रत उमर (रज़ि0) के फतवे का परिवर्तित होना : इसी तरह घोड़े की जकात के सम्बन्ध में हज़रत उमर का नियम, इमाम अहमद और तिबरानी ने रिवायत किया हैः

''सीरिया के कुछ लोग हज़रत उमर के पास आये और कहा कि हमने बहुत से सामान प्राप्त किये हैं अर्थात घोड़े और दास आदि, हम चाहते है कि उनमें भी ज़कात दें ताकि यह भी पवित्र और शुद्ध हो जाये। हज़रत उमर ने फ़रमाया कि जो काम मुझसे पहले मेरे दोनों साथियों (अर्थात अल्लाह के रसूल और हज़रत अबू बक्र) ने नहीं किया उसको मैं कैसे कर सकता हूँ, फिर आपने सहाबा से परामर्श किया।

1. सर्वसम्मतः बुख़ारी (1506) मुस्लिम (985) अहमद (11698) अबू दाऊद (1616) तिर्मिजी (673) नसई (251) इब्ने माजा (1829) सबने किताबुज्जकात में रिवायत किया है। हज़रत अमीर मुआविया के मदीना की घटना इब्ने माजा और मुस्लिम में है।

हज़रत अली (रज़ि0) ने फ़रमाया ये अच्छा विचार है यदि वह निर्धारित जजिया का रूप न ले ले जिसे आपके बाद भी उनसे लिया जाने लगे।''[1]

अब्दुल रज्ज़ाक और बैहक़ी ने यअला बिन उमय्या से रिवायत किया है : ''यअला के भाई अब्दुल रहमान ने यमन के एक व्यक्ति से सौ जवान ऊँटनियों के बदले एक घोड़ा खरीदा, विक्रेता को लगा कि उसने घोड़ा सस्ता बेच दिया और वह हज़रत उमर के पास गया और शिकायत किया कि यअला और उसके भाई ने मेरा घोड़ा छीन लिया, हज़रत उमर ने यअला को लिखा कि मुझसे मिलो। वह आये और उनको पूरी बात बताई। हज़रत उमर (रज़ि0) ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा कि क्या घोड़े का उनके यहाँ इतना महत्व है? मुझे तो आशा नहीं कि घोड़े का इतना मूल्य होगा। हम चालीस बकरियों में से एक बकरी जकात लेते हैं और घोड़े में से कुछ नहीं लेते। अब हर घोड़े पर एक *दीनार* ज़कात वसूल करो, इस तरह उन्होंने घोड़ों पर एक–एक दीनार ज़कात लागू कर दिया[2]।''

---

1. अहमद (252) ने हज़रत उमर बिन खत्ताब से रिवायत किया है इस हदीस की पड़ताल करने वालों ने लिखा है कि इसका प्रमाण सही है इसकी रिवायत करने वाले सच्चे हैं, इब्ने खजीमा ने किताबुज्जकात (30/4) में, हाकिम और मुस्तरद ने किताबुज्जकात (400/1) में इसकी रिवायत की है और कहा कि इसका प्रमाण सही है लेकिन बुखारी और मुस्लिम ने इसकी पड़ताल नहीं की। इमाम बैहकी ने सुननुल कुब्रा में (118/4) और अब्दुर्रज्जाक ने मुस्सनत में किताबुज्जकात (6887) में इसकी रिवायत की है। इसके अतिरिक्त देखिये हमारी किताब फिक्हुज्जकात (236/1)
2. तहावी ने शरह मआनिउल आसार किताबुज्जकात (36/4) में और बैहकी ने सुननलुल कुब्रा किताबुज्जकात (199/4) में इसकी रिवायत की है।

रिवायत में इस बात का उल्लेख नहीं है कि यह कहानी उसके पश्चात की है; यद्यपि विवेकपूर्ण बात यही प्रतीत होती है, चूंकि हज़रत उमर पहली घटना में संकोच में थे कि ऐसा काम जो रसूलुल्लाह (सल्ल0) और हज़रत अबू बक्र ने नहीं किया वह काम कैसे करें और उसके लिए सहाबा से परामर्श लिया, हज़रत अली ने भी इसका परामर्श दिया।

इस दूसरी घटना में देखने में उन्होंने किसी से परामर्श नहीं लिया बल्कि पूरा मामला उनके सामने पूरी तरह स्पष्ट था और उस समय वह देख–सुन कर स्वयं एक मत निर्धारित कर चुके थे और उन्होनें अपने गर्वनर को आदेश दिया कि प्रत्येक घोड़े पर एक दीनार वसूल करे। इस तरह हज़रत उमर (रज़ि0) ने युग और परिस्थितियों के परिवर्तन से अपना फतवा परिवर्तित कर दिया और पिछली घटना में उनका जो विचार बना था उस पर अटल होकर न बैठ गये; क्योंकि इज्तेहाद अपनी आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित हो जाता है।

उन्होंने एक बार एक समस्या में दो भिन्न समय में दो भिन्न फतवे दिये और जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने यही बताया कि पहले हमारा फतवा उस आधार पर था जो उस समय हमें मालूम हुआ और यह फतवा इस आधार पर है जो हम अब जानते हैं।

हमारे युग में फतवा के परिवर्तन के कारण

हमारे युग में भी फतवा के परिवर्तन के कुछ कारण विद्यमान हैं जिनके अनुसार प्रारम्भिक फ़कीहों ने फतवे दिये, हम यहाँ उनमें से दस कारणों का उल्लेख करेंगे, जिनमें से कुछ कारणों का उल्लेख प्रारम्भिक फ़कीहों ने भी किया है जैसे युग स्थान परिस्थिति और रीति में परिवर्तन और कुछ ऐसे कारण हैं जिनका मैंने अध्ययन और चिन्तन और इस्लामी विरासत के अध्ययन करने के बाद वृद्धि किया है जो फतवा के परिवर्तन का तकाजा करते हैं। यह वास्तविकता है कि जो व्यक्ति भी मेरी तरह इन समस्याओं पर चिन्तन करेगा वह इनको स्वीकार करेगा। मैं इन सबका विस्तारपूर्वक और उदाहरणों के साथ उल्लेख करुंगा, ताकि पाठक के समक्ष इसके अर्थ और इसका उद्देश्य पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाये और अल्लाह तआला ही इसकी क्षमता देने वाला हो।

सबसे पहले हम उन चार कारणों का उल्लेख करेंगे जिनका उल्लेख हमारे पूर्वजों ने भी किया है फिर उनमें उन कारणों को जोड़ेंगे जिनको हमने अन्य जगहों से लिया है। वह कारण निम्नलिखित है :

1. स्थान का परिवर्तन
2. युग का परिवर्तन
3. परिस्थितियों का परिवर्तन
4. रीति–रिवाज का परिवर्तन
5. जानकारी में परिवर्तन

6. आवश्यकताओं का परिवर्तन

7. लोगों की योग्यताओं और सम्भावनाओं में परिवर्तन

8. उमूमे बलवा (सामान्य विपत्ति)

9. सामूहिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का परिवर्तन

10. मत और विचारों का परिवर्तन

(1)
स्थान का परिवर्तन

फतवा में परिवर्तन का एक कारण स्थान का परिवर्तन है। हमारे प्रारम्भिक उलमा ने फतवा के परिवर्तन में इस कारण का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। इसमें सन्देह नहीं कि विचार और कार्यविधि पर प्रभावी होने में स्थानीय परिस्थति का महत्व बहुत अधिक है, हम देखते हैं कि देहात नगर से भिन्न होते हैं, नगर के समीपवर्ती क्षेत्र के लोग नगर के लोगों से भिन्न होते हैं, गर्म देश ठण्डे देशों से भिन्न होते हैं, पूर्वी और पश्चिमी देशों में पर्याप्त अन्तर होता है तथा दारुल इस्लाम (जहाँ मुसलमानों का शासन हो), दारुल हर्ब (जहाँ मुसलमान अन्य लोगों से युद्धरत हों) और दारुल अहद (वह स्थान जहाँ मुसलमान और अन्य लोग आपस में समझौता करके रहते हों) की भी हैसियत एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न होती है, अतः इन स्थानों से प्रत्येक स्थान का क़ानूनी आदेश में अपना एक प्रभाव है जो अपने तुलनात्मक रूप से भिन्न स्थान से भिन्न है; इसलिए किसी आलिम (इस्लामी विद्वान) का एक फतवा पर जमे रहना उपुयक्त नहीं, कि वह न तो उसको बदलने के लिए तैयार हो और न ही उसे छोड़ने के लिए, बल्कि अनिवार्य है कि उपरोक्त मतभेदों और परिवर्तनों को ध्यान में रखा जाये। उसी स्थिति में वह न्याय और सन्तुलन प्राप्त हो सकता है जो शरीअत में वांछित है, और शरीअत के सभी आदेशों में जिसका प्राप्त करना उसका उद्देश्य है।

1. गाँव और नगर का अन्तर : देहात का प्रभाव देहातियों पर होता है, इसका उल्लेख कुरआन में इस प्रकार हुआ है : ''ये देहाती अरब कुफ़्र (अवज्ञा) और कपटाचार में अधिक कठोर हैं और उनके मामले में इस बात की सम्भावनाएँ अधिक हैं कि उस धर्म की सीमाओं से अनभिज्ञ रहें जो अल्लाह ने अपने रसूल पर उतारी हैं, अल्लाह सब–कुछ जानने वाला विवेकशील है''। (सूरः तौबा : 97)

हदीस में है : ''जो देहात में रहा वह उजंड्ड हो गया''[1], इसलिए

---

1. यह एक हदीस का टुकड़ा है हदीस इस प्रकार है : ''जिसने देहाती जीवन अपनाया वह उजंड्ड हो गया, जिसने शिकार का पीछा किया वह असावधान हुआ और जो शाशक के चौखट पर आया वह परीक्षा में पड़ गया, और जो व्यक्ति शासक के जितना निकट होगा अल्लाह तआला से उतना ही दूर हो जायेगा'' इस हदीस की रिवायत अहमद (8836) ने हज़रत अबू हुरैरा से की है, इसकी पड़ताल करने वालों ने लिखा है कि यह हदीस कमज़ोर है क्योंकि इसके प्रमाण में संशय है, और हदीस में एक दूसरा कारण भी है, वह यह कि इसके प्रमाण में हसन बिन अल हकम एक मात्र रिवायत करने वाले हैं जिनपर समस्त प्रमाणों का आधार है। इनके सम्बन्ध में यहया बिन मुईन और अहमद बिन हम्बल ने अच्छी बात कही है और उन्हें विश्वसनीय ठहराया है, अबू हातिम ने सालेह हदीस कहा है। इब्ने हिब्बान ने मजरूहीन में उनकी कठोर आलोचना करते हुए लिखा है कि बहुत गलती करते थे और अत्यधिक भ्रम में पड़े हुए थे। मुझे इस हदीस को तर्क बनाना पसन्द नहीं जिसमें वह अकेले हों, इसके बाद प्रमाण बयान करके उसको निरस्त किया है। जहबी ने भी अल–मीजान (486/1) में उनके जीवन के बारे में लिखते हुए उनकी आलोचना की है। बैहकी ने शोबुल ईमान (47/7) और सुननलुल कुब्रा (101/10) में इसको रिवायत किया है, और बैहकी ने कहा है कि इसको अहमद और बज़ार ने रिवायत किया है, इमाम अहमद के दो प्रमाणों में से एक के रिजाल (रिवायत करने वाले) सही हैं, सिवाय हसन बिन अल हकम अल नखई के और वह विश्वसनीय हैं (443/5) अल मुंजीर ने अत्तरगीब में लिखा है कि इमाम अहमद ने इसको दो प्रमाणों से रिवायत किया है। इमाम अहमद की एक रिवायत के करने वाले सही हैं (268/2) ने अपनी अस्सहीहः में इसको हसन बताया है (1272)।

इसके अतिरिक्त इमाम अहमद ने मुसनद (3362) में इब्ने अब्बास से इन

अगले पृष्ठ पर

इस्लाम का उद्देश्य था कि देहात वालों को नगरों की तरफ स्थान्तरित किया जाये, जो भी इस्लाम धर्म स्वीकार करता उसका मदीना शहर की ओर हिजरत करना अनिवार्य था[1]; ताकि वह शिक्षा और संस्कृति से सुसज्जित हो मनुष्य का हिजरत के बाद फिर से देहाती बन जाना बड़े गुनाहों में से था। इसलिए कोई सन्देह की बात नहीं है यदि देहात के लिए आदेश दूसरे हो और नगर के दूसरे; क्योकि देहात का अपना प्रभाव होता है।

यहाँ एक तथ्य महत्वपूर्ण है जिसको हमारे उलमा ने लिखा है और वह फर्ज कार्यों (कर्त्तव्यों) की अवज्ञा से सम्बन्धित है, अर्थात इस्लाम के मौलिक कर्त्तव्य जैसे नमाज़, ज़कात, रोज़ा और हज आदि में किसी एक का इन्कार–––यह कर्त्तव्य अनिवार्य रूप से सबको मालूम होते हैं, इनसे प्रत्येक सामान्य और विशेष व्यक्ति भिज्ञ होता है–––अल्लाह और उसके रसूल को झुठलाने जैसा होगा जो कि कुफ्र की श्रेणी में है।

पिछले पृष्ठ के हवाले का शेष ....

शब्दों के साथ रिवायत किया है : ''जो देहात में रहने लगा वह उजंड्ड हो गया, और जिसने शिकार का पीछा किया वह असावधान हुआ और जो शासक के दरवाज़े आया वह परीक्षा में पड़ गया'' इसकी पड़ताल करने वालों ने कहा है कि यह हसन लिगैरिही है और इसका प्रमाण कमजोर है, क्योंकि इसमें अबू मूसा हैं जो अज्ञात हैं, अबू दाऊद ने इसको किताबुस्सैद में रिवायत किया है। तिर्मिज़ी ने किताबुल फतन (2256) में रिवायत करते हुए कहा : यह इब्ने अब्बास के प्रमाण से हसन सहीह ग़रीब है, हम शौरी के प्रमाण के अतिरिक्त नहीं जानते। नसाई ने इसको सैद (4309) में रिवायत किया है, और अलबानी ने सहीह अबू दाऊद (2486) में इसको सही ठहराया है।

1. देखिये हमारी किताब ''अल–मुनक्का मिन किताबित्तरगीब वत्तरहीब'' में हदीस संख्या (1312) पर हमारी टिप्पणी।

इसी तरह उलमा ने इस बिन्दु पर वार्ता भी किया है कि नगर या उपनगर के वासी के सम्बन्ध में देहाती की गवाही या उसके अपने पक्ष में उसकी गवाही के सम्बन्ध में क्या आदेश है। कुछ फ़कीहों ने तो इससे इन्कार किया है; चूंकि देहाती नगर वालों की रीति, संस्कृति और रहन–सहन से अनभिज्ञ होता है और उन मामलों से भी अनभिज्ञ होता है जो नगरवासियों के आपस में होते हैं और नगर में जो शब्द प्रयोग किये जाते हैं उनसे भी अनभिज्ञ होता है, यदि वह गवाही देगा तो मानो वह उस बात की गवाही देगा जिससे वह पूर्णतः भिज्ञ नहीं, इन उलमा का कथन है कि हाँ यदि देहाती ऐसा है जो निरन्तर शहर में आता रहता है, लोगों से मिलता है उनकी बैठकों में सम्मिलित होता है तो चूंकि वह शहरी जैसा हो गया इसलिए उसके गुण मेल–जोल और रहने–सहने से परिवर्तित हो गये इसलिए उसके सम्बन्ध में आदेश भी बदल गया।[1]

अबू दाऊद और इब्ने माजा आदि ने हज़रत अबू हुरैरा से *मरफ़ूअन* (तारतम्यपूर्वक) रिवायत किया हैः ''शहरवासी के सम्बन्ध में देहाती की गवाही विश्वसनीय नहीं है[2]।'' इब्नुल क़ासिम कहते हैं कि

1. मुईनुल इहकाम अला कज़ाया वल अहकाम (448–49/2) युग और स्थान और फ़तवा में परिवर्तन पर उनके प्रभावों के हवाले से, युसूफ मेहदी, जजायर के धार्मिक मामलों के मन्त्रालय के प्रकाशन पृ० 180
2. इब्ने माजा ने अहकाम (2367) में अबू दाऊद ने अकज़ीयः (3602) में, हाकिम ने अहकाम (111/4) में इस हदीस को अबू हुरैरा से रिवायत किया है, इमाम हाक़ीम ने इस पर कुछ नहीं कहा है, जहबी ने लिखा है कि लेखक ने इसे सही नहीं ठहराया है। प्रमाण के अनुसार यह हदीस मुन्कर है हाँ अल–बानी ने इसको सही कहा है, तहाबी ने लिखा है कि खत्ताबी ने कहा कि शायद यह बात है कि आपने शहर के रहने वाले के सम्बन्ध में देहाती की गवाही को पसन्द नहीं किया। चूंकि उसको गवाही देने का ज्ञान नहीं है और अपने ज्ञान की कमी के कारण वह गवाही का हक़ अदा नहीं कर सकता, इमाम अहमद ने भी यही बात कही है। मआनिउल आसार (174/4)

पहली तारीख का चाँद देखने के सम्बन्ध में देहाती की गवाही विश्वसनीय होगी[1]। इसलिए कि यहाँ सन्देह की गुंजाइश नहीं, दूसरी बात यह है कि चाँद की गवाही का मामला इबादतों से सम्बन्धित है न कि लेन–देन से; लेकिन हम अपने युग में देखते हैं कि देहाती चाँद की गवाही देने में जल्दी करते हैं और इस मामले में ज़रा भी संकोच नहीं करते, कई बार ऐसा हुआ कि उनकी गवाही पर चाँद का फैसला कर दिया गया, लेकिन मालूम हुआ कि अगली रात चाँद को किसी ने नहीं देखा जिसे दूसरी रात गिना जा रहा है।

यहाँ एक प्रश्न यह भी उल्लेखनीय है कि क्या देहात का रहने वाला शहर में रहने वालों की नमाज़ में नेतृत्व कर सकता है, इमाम कर्तबी ने लिखा है कि देहाती का शहरवासियों की इमामत करना मना है; चूंकि वह लोग सुन्नत से भिज्ञ नहीं होते और जुमें की नमाज छोड़ देते हैं, कुछ लोगों ने इसको मकरुह (घृणित) लिखा है, इमाम मालिक कहते हैं कि देहाती चाहे उनसे अच्छा क़ारीब (क़ुरआन पढ़ने वाला) ही क्यों न हो शहर वालों की इमामत न करे, इस समस्या में इमाम सौरी, शाफई इस्हाक और निर्णय लेने की क्षमता रखने वालों में मतभेद है[2]

जिस प्रकार शहर और देहात के कारण फतवा में परिवर्तन होता है उसी तरह गर्म क्षेत्रों और ठण्डे क्षेत्रों के कारण भी परिवर्तन होता है; चूंकि मौसम का प्रभाव उसके रहने वालों पर मात्र चमड़े और रंग पर ही नहीं पड़ता, उसके अन्य प्रभाव भी होते हैं जैसे उनकी आवश्कताएँ अलग हो जाती हैं गर्म क्षेत्रों के लोग ठण्डे क्षेत्रों के लोगों की तुलना में

---

1. अल–जखीरः कराफी, (283–85/10) अल बोअदल जमानी वल मकानी के हवाले से, पृ० 181।
2. क़र्तबी, जामिउल अहकामुल फिक्हीयः तरतीबुल जुन्दी (228/1) उपर्युक्त के हवाले से।

खुरदरे और जल्दी क्रोधित होते हैं, आदि।

स्थान के परिवर्तन के प्रभावों का सम्बन्ध उन क्षेत्रों से भी है जहाँ लगातार वर्षा होती है या बहुत अधिक बर्फ गिरती है और उन लोगों का अपने घरों से निकलना भी कठिन और असंभव हो जाता है; क्योंकि अल्लाह तआला ने धर्म में कोई तंगी नहीं रखी, इसलिए ऐसे क्षेत्रों में नमाज़ जमाअत समूह के साथ पढ़ने को अनिवार्य कहते हैं, उनके विचार में भी इसकी अनिवार्यता निलम्बित हो जाती है, और जो इसके पसन्दीदा होने के समर्थक हैं उनके विचार में पसन्दीदगी निलंबित हो जाती है। हदीसों से सिद्ध है कि वर्षा के कारण दो समय की नमाज़ों को एक साथ पढ़ लेना वैध है, जिस व्यक्ति को ठण्डक की कठोरता के कारण बीमार पड़ जाने का भय हो और पानी गर्म करने का साधन न हो तो उसके लिए पानी की मौजूदगी में भी फ़क़ीहों ने भी *तयम्मुम* (साफ मिट्टी से चेहरे और हाथ में लगाकर पवित्रता प्राप्त करना) को वैध ठहराया है।

अम्र बिन आस ने एक युद्ध में जिसमें रसूलुल्लाह (सल्ल0) मौजूद नहीं थे अपने साथियों को इस स्थिति में नमाज़ पढ़ाई कि वह अपवित्र थे और उन्होंने मात्र तयम्मुम किया था। जब वह वापस हुए तो लोगों ने उनकी शिकायत अल्लाह के रसूल से की, आप (सल्ल0) ने उनसे पूछा तो उन्होंने बताया कि रात में ठण्डक बहुत कठोर थी मुझे अल्लाह का यह कथन याद आया :

''अपने आप को कत्ल न करो निस्सन्देह अल्लाह तुम्हारे ऊपर अत्यन्त दयावान है।'' (सूरः निसा : 29)

यह सुनकर आप (सल्ल0) मुस्कुरा दिये, मानों उन्होंने जो किया उसका समर्थन कर दिया, इस तरह यह रसूलुल्लाह (सल्ल0) द्वारा समर्थित सुन्नत हो गई।

उत्तरी ध्रुव के निकट एस्किमों के देशों के लोगों के पास तयम्मुम के लिए पवित्र मिट्टी भी नहीं होती। उनके चारों तरफ मात्र बर्फ ही बर्फ होती है, अतः वर्फ ही उनके लिए मिट्टी है; चूंकि इसके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं है वह लोग अपनी गाड़ियों को खीचने के लिए कुत्तों का प्रयोग करते हैं; क्योंकि यह कुत्ते ही वहाँ की ठण्डक सहन कर पाते हैं, क्या हम उनके लिए कुत्ते पालनह हराम ठहरा देंगे जबकि यह उनके जीवन और अर्थव्यवस्था की आवश्यकता बन चुकी है? या इस जैसी परिस्थिति में कुत्ते पालने की सामान्य रोक से उनको अलग करेंगे? इस सम्बन्ध में निस्सन्देह उनको अलग रखना ही उचित दृष्टिकोण है और फ़िक़्ह में दूरदृष्टि का लक्षण है और शरीअत के उद्देश्यों से अधिक निकट है यह कुत्ते न तो किसी को काटते हैं और न किसी छोटे या बड़े को डराते हैं और न किसी को कष्ट देते हैं, बल्कि लोगों की सेवा करते हैं। इस तरह उनकी हैसियत सामान्य पशुओं की हो गई।

स्थान परिवर्तन के प्रभावों का एक उदाहरण भू—भाग के वे क्षेत्र हैं जहाँ सूरज छः महीने तक चमकता रहता है और छः महीने डूबा रहता है, अर्थात आधे वर्ष का दिन होता है और आधे वर्ष की रात होती है, इस तथ्य से सभी परिचित हैं।

इन क्षेत्रों के रहने वालों को अनुमान के आधार पर धार्मिक कर्त्तव्य पूरा करने का फतवा दिया जाता है, अर्थात अपने समय को 24 घंटों में बाँट लें और उस 24 घंटों में पाँच बार की नमाज़ों को अदा करें और मक्का और मदीना के समय के हिसाब से नमाज़ें पढ़े, इसलिए कि इन्ही दोनो शहरों में रसूलुल्लाह पर *वही* (अल्लाह का सन्देश) अवतरित हुई थी, या फिर ऐसा करें कि उनके सर्वाधिक निकट सन्तुलित

रात–दिन वाले स्थानों की समय–सारणी के अनुसार इस्लामी कर्म करे। इस अनुमान के लिए दज्जाल वाली प्रसिद्ध हदीस से तर्क दिया गया है : ''एक दिन इतना लम्बा होगा कि एक वर्ष के बराबर होगा''1

यूरोप में हमारे मुसलमान भाइयों ने मुस्लिम संगठनों का एक संघ '*इत्तहादुल मंज़मातुल इस्लामियः*' स्थापित किया और फतवा और शोध के लिए यूरोपिय काउन्सिल '*अल मजलिसुल औरूबी लिल इफ़्ता वल बुहूस*' स्थापित किया है। इन संस्थाओं का उद्देश्य है कि जो मुसलमान दारुल इस्लाम के बाहर रहते हों और विशेष रूप से वह मुसलमान जो यूरोप में रहते हों उनकी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनकी परिस्थितियों के अनुसार उन्हें रियायत दें। यह स्थान परिवर्तन बड़ें परिवर्तनों में से एक है, वास्तविक उद्देश्य तो यह है कि मुसलमान इस्लामी वातावरण में जीवन व्यतीत करें, इससे इस्लामी आदेशों पर अमल करने में बहुत आसानी होती है लेकिन जो मुसलमान किसी दूसरे समाज में रहते हैं, ऐसा समाज जो अपने विश्वासों और आदर्शों में भिन्न हो तो वहाँ पर ढ़ील और रियायत की आवश्यकता होती है, यहाँ स्थान परिवर्तन बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है और उसका

---

1. हमने पूछा ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल0) वह जमीन में कितने दिन रहेगा। आपने फ़रमाया कि 40 दिन, एक दिन एक वर्ष के बराबर होगा। और एक दिन एक महीने के बराबर होगा और एक दिन एक जुम्मे के बराबर, फिर उसके पश्चात सभी दिन उसी तरह होंगे जैसे तुम्हारे दिन होते हैं। हमने पूछा ऐ अल्लाह के रसूल क्या उस समय मात्र एक दिन की नमाज़ पर्याप्त होगी। आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया नहीं बल्कि अनुमान लगाकर नमाज़ पढ़ना, इस रिवायत को मुस्लिम ने किताबुल फतन (1237) में, अहमद ने मुसनद (17629) में अबू दाऊद किताबुल मलाहिम में (4321) तिर्मिज़ी (2240) और इब्ने माजा ने किताबुल फतन में (4075) में नुवास बिन समआन से की है।

बहुत प्रभाव पड़ता है। स्थान परिवर्तन उन कारणों में से है जिनके आधार पर मिस्र जाकर इमाम शाफई को अपने कुछ उन फतवों को परिवर्तित करना पड़ा जो उन्होंने बगदाद में दिया था, चूँकि मिस्री समाज इराक और अरब के हिजाज के समाज़ से अलग था, इसलिए स्थान परिवर्तन उन महत्वपूर्ण कारणों में से है जिनसे उनको पुराने मत से आधुनिक मत की ओर अग्रसर होना पड़ा।

2. दारुल इस्लाम आदि के अनुसार स्थान का परिवर्तन :

इसमें सन्देह नहीं कि स्थान परिवर्तन के अनुसार दारुल इस्लाम, ग़ैर दारुल इस्लाम से भिन्न होता है; चाहे हम इसको दारुल हर्ब कहें या दारुल अहद या दारुल कुफ्र[1]।

इसका अर्थ यह है कि दारुल इस्लाम में मुसलमान अपने परिवार और अपने समाज के बीच रहता है, यह उनके लिए ऐसा ही है जैसा पानी मछली के लिए, और हवा पक्षियों के लिए, यह स्थान उसके लिए ऐसी गोद है जो उसका रक्षक और समर्थक होती है, और ऐसा स्कूल है जो उसको शिक्षा और प्रशिक्षण देता है, यह ऐसा घोसला है जो उसके लिए छाया का काम करता है, और एक ऐसा मीनार है जो

1. दारुल कुफ्र से तात्पर्य अल्लाह तआला का इन्कार नहीं है बल्कि मुहम्मद (सल्ल0) की रिसालत का इन्कार है। वह लोग इसमें सम्मिलित हैं जो मुहम्मद (सल्ल0) के रसूल होने का इन्कार करते हैं चाहे वह यहूदी और ईसाई ही क्यों न हो, यह स्वभाविक है कि प्रत्यके धर्म का मानने वाला लोगों का बँटवारा इस प्रकार करता है कि लोग दो तरह के हैं एक वो जो हमारे धर्म को मानते हैं और दूसरे वो जो हमारे धर्म को नहीं मानते। जिस तरह वह हमारी दृष्टि में काफिर है उसी तरह हम उनकी दृष्टि में काफिर है।

उसका मार्गदर्शन करता है। मुसलमान उस समाज से इस्लामी विश्वासों को सीखता है, उस समाज के द्वारा इस्लामी शरीअत की जानकारी प्राप्त करता है, और इस समाज से शिष्टाचार और चरित्र का ज्ञान प्राप्त करता है, वह अपने माँ—बाप, भाई, निकट सम्बन्धियों पड़ोसियों, बुर्जुगों, शिक्षकों और समाज के सभी लोगों से ज्ञान सिखता है, मस्जिद से भी सीखता है और मदरसे से भी, घर से भी सीखता है और रास्ते से भी।

उस व्यक्ति को यह सुविधाएँ प्राप्त नहीं जो दारुल इस्लाम के बाहर रहता है, दूसरे शब्दों में जो ग़ैर मुस्लिम समाज में रहता है, वह प्रतिपल परीक्षा की घड़ियों में जीवन व्यतीत कर रहा होता है, इसलिए कि उसके आस—पास का वातावरण अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह में उसका सहयोगी नहीं होता और न ही हराम की हुई चीज़ों से बचने में सहयोगी होता है; बल्कि इसके विपरीत हराम चीज़ों में लिप्त होने के लिए उकसाता है और अच्छे कर्मों को करने से रोकता है।

यही कारण है कि दारुल कुफ्र और दारुल हर्ब के शरई आदेश दारुल इस्लाम के आदेशों से भिन्न होते हैं, उनमें से अधिकतर आदेश ढ़ील और रियायत पर आधारित होते हैं, और कुछ आदेशों में परिस्थितियों के अन्तर्गत कठोरता भी होती है, जैसे यदि उसके लिए अपने दीन पर अमल करना कठिन हो जाये तो उसको दारुल इस्लाम की तरफ हिजरत करना अनिवार्य हो जाता है।

इन्ही परिस्थितियों के सम्बन्ध में क़ुरआन मजीद की यह आयत अवतरित हुई : ''रहे वे लोग जो ईमान तो ले आये परन्तु हिजरत करके आ नहीं गये——अर्थात दारुल हर्ब से दारुल इस्लाम की तरफ——तो उनसे तुम्हारी दोस्ती अर्थात उनकी सहायता का कोई सम्बन्ध नहीं जब तक वह हिजरत करके आ न जायें। हाँ यदि वह दीन (धर्म) के मामले

में तुमसे मदद माँगे तो उनकी मदद करना तुम पर अनिवार्य है, परन्तु किसी ऐसी क़ौम के विरुद्ध नहीं जिनसे तुम्हारा समझौता हो।''

(सूरः अन्फाल : 72)

वे मुसलमान जो दारुल हर्ब में उन शिर्क करने वालों के साथ रहते है जो मुसलमानों के साथ युद्धरत हैं उनकी सहायता मुसमानों पर अनिवार्य नहीं। यह बात उस समय थी जब प्रत्येक मुसमान के लिए मदीना की ओर हिजरत करना आवश्यक था, फिर मक्का विजय के साथ ही यह आदेश निरस्त हो गया। रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''मक्का विजय के बाद हिजरत नहीं, परन्तु जेहाद और नीयत अभी शेष है''1

क़ुरआन मजीद की आयत है :

''यदि वह दीन (धर्म) के सम्बन्ध में तुमसे सहायता चाहे तो उनकी सहायता करना तुम पर अनिवार्य है, लेकिन किसी ऐसी क़ौम के विरूद्ध नहीं जिससे तुम्हारा समझौता हो।'' (सूरः अन्फाल : 72)

वे मुसलमान जो दारुल हर्ब में शिर्क करने वालों के साथ रहते हों और उन शिर्क करने वालों और इस्लामी राज्य के बीच समझौता हो और यदि वे सहायता की माँग करें तो उनकी सहायता करना मुसलमानों की जिम्मेदारी नहीं है, इसलिए कि दारुल हर्ब में रहने के कारण उनकी हैसियत कमज़ोर हो गई है यहाँ तक कि यदि इस्लामी सरकार और ग़ैर मुस्लिमों के बीच समझौता हो तो इसकी तुलना में मात्र धार्मिक

---

1. हदीस सर्वसम्मत है : बुख़ारी ने अल–जेहाद (2783) में, मुस्लिम ने इमारः (1353) में, अहमद ने नुसनद (1991) में, अबू दाऊद ने अल जेहाद (2480) में, तिर्मिजी ने अल सेअर (1590) में, नसई अल बैयत (4170) में, इब्ने माजा ने अल–जेहाद (2073) में, हज़रत इब्ने अब्बास से रिवायत किया है।

सम्बन्ध उनकी सहायता के लिए पर्याप्त नहीं है।

इसी प्रकार हदीस में आया है:

''मैं प्रत्येक उस मुसलमान से बरी हूँ जो शिर्क करने वालों के बीच रहता है।''2 अर्थात यदि उस स्थिति में मुसलमानों ने युद्ध के दौरान उसकी हत्या कर दी तो उसके खून की जिम्मेदारी नहीं है चूँकि मुसलमान उसकी गलती से शत्रु या युद्धरत समझकर हत्या करेंगे, उनको मालूम ही न होगा कि यह मुसलमान है, उलमा ने दारुल इस्लाम के मुसलमान और उसके अतिरिक्त दूसरी जगहों के रहने वाले मुसलमानों के बीच भेद किया है।

इन्हीं मामलों की तरह यह आदेश भी है कि जो व्यक्ति नमाज़ के अनिवार्य होने या रोज़ा ज़कात के अनिवार्य होने या व्यभिचार अथवा मदिरा या सूद के हराम होने, जो कि अन्तिम (Final) आदेश हैं इनका इन्कार करे तो उसको कुफ्र और इस्लाम से फिर जाने के आदेश में रखा जायेगा। चूँकि मुस्लिम समाजों के बीच रहने से दीन और धर्म की इन बुनियादों का ज्ञान हो जाता है और उनका शरई आदेश भी सभी को ज्ञात हो जाता है, इनका इन्कार वास्तव में अल्लाह और रसूल (सल्ल0) को झुठलाने के समान होगा।

---

1. अबू दाऊद ने अल–जेहाद (2645) में जरीर बिन अब्दुल्लाह से रिवायत की है वो फरमाते हैं कि हैषम, मअमर, खालिद अल वासिती और एक समूह ने इसको रिवायत किया है परन्तु उन्होने जरीर का उल्लेख नहीं किया, तिर्मिजी ने अल–सेअर (1604) में मौसूल और मुर्सल दोनो तरह से रिवायत की है (1605) नसई ने इसको मात्र मुर्सल रिवायत की है (4780) अलबानी ने इसको सहीहुल जामेअ में गिना है (1461) और सहीह अबू दाऊद (2304) सहीह तिर्मिज़ी (1307) अल इरवा (1207) में रिवायत की अतिरिक्त इस वाक्य के ''सत्ता आधी बुद्धि है''।

लेकिन इस आदेश से वह लोग अलग होंगे जो दारुल इस्लाम के बहार रहते हों; क्योंकि वह इन बातों से अनभिज्ञ होने के कारण विवश होंगे। इसके विपरीत जो दारुल इस्लाम में रहते हों, उनके लिए अनभिज्ञता कोई विवशता नहीं होगी। इसलिए कि इन बातों का सीखना और जानना वहाँ आसान है, और प्रत्येक के लिए इसकी सुविधा उपलब्ध है। कुछ फ़कीहों ने दारुल इस्लाम से बाहर रहने वाले मुसलमानों के लिए कुछ दूसरे मामलों में भी ढ़ील का रवैया अपनाया है।

(2)
युग का परिवर्तन

फतवा में परिवर्तन का एक कारण युग का परिवर्तन भी है, और यह भी हमारे पूर्वजों से प्रमाणित है, युग के परिवर्तन का यह अर्थ नहीं है कि एक वर्ष पूरा हो गया और दूसरा वर्ष प्रारम्भ हो गया, या एक दशक समाप्त हो गया और दूसरा दशक प्रारम्भ हो गया, या एक शताब्दी समाप्त हो गई दूसरी शताब्दी का आरम्भ हो गया; इस तरह के परिवर्तन फतवा को प्रभावित नहीं करते, बल्कि तात्पर्य यह है कि युग के परिवर्तन के कारण लोगों की परिस्थितियाँ बदल जायें, अतः आज का युग जिसमें हम जीवन व्यतीत कर रहे हैं वह उस युग से पूर्णत भिन्न है जिसमें हमारे पूर्वजजीवन व्यतीत करते थे इस युग में ऐसे बहुत से नये प्रश्न सामने आये हैं जिनको ध्यान में रखना मुफ्ती के लिए अत्यन्त अनिवार्य है, यह उचित नहीं है कि वह एक ही बात पर अटल रहे, विशेष रूप से जब ऐसा परिवर्तन हो जाये कि जो भलाई हो उसे बुराई में गिना जाने लगे और जो बुराई हो वह अधिक बुराई हो जाये, जिसको हमारे प्राचीन फ़कीहों ने ज़माने का फ़साद ''युग का बिगाड़'' लिखा है।

वास्तविकता यह है कि युग में बिगाड़ नहीं होता बल्कि लोगों में बिगाड़ होता है, जैसा कि अरब कवयित्री खन्सा एक शेअर में कहा है :

''रात और दिन अपनी लम्बी यात्रा में बिगाड़ का शिकार नहीं होते,

बल्कि लोगों में बिगाड़ उत्पन्न हो जाता है।''

यहाँ युग के परिवर्तन से तात्पर्य लोगों में बिगाड़ का फैल जाना

और लोगों के चरित्र का बिगड जाना है, अर्थात लोगों में बनाव से बिगाड़ की ओर, सन्मार्ग से विचलन की ओर, बन्धुत्व से गर्व की ओर, कोमलता से कठोरता की ओर आदि प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जायें; चूँकि जब मनुष्यों के चरित्र बदल जायेंगे तो इस परिवर्तन के साथ फ़तवा और शरई आदेशों में भी परिवर्तन हो जायेगा ताकि वे उस परविर्तन के अनुकूल हो सके। जैसा कि हमारे पूर्वजों में से उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने फ़रमाया : ''लोगों में जितना बिगाड़ पैदा करेंगे, उसी प्रकार उनकी समस्याएँ भी बढ़ेंगी।'' अर्थात लोगों में जितना बिगाड़ पैदा होगा उसके अनुपात में ऐसे शरई आदेश दिये जायेंगे जो उस बिगाड़ को सुधार सकें।

युग का परिवर्तन एक महत्वपूर्ण तथ्य है। हनफी उलमा में विशेष रूप से इमाम अबू हनीफा और उनके दो महत्वपूर्ण शिष्यों के बीच मतभेद का एक मुख्य कारण युग का परिवर्तन भी है। यह बात प्रसिद्ध है कि दोनों शिष्यों ने एक तिहाई या दो तिहाई मामलों में हनफी मत के संस्थापक इमाम अबू हनीफा से मतभेद किया है, इस मतभेद के सम्बन्ध में कुछ उलमा का मत यह है कि यह वास्तव में युग की भिन्नता का परिणाम है[1]

उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ जब मदीना के गर्वनर थे तो एक व्यक्ति की गवाही और मुद्दा अलैह (प्रतिवादी) के शपथ के आधार पर फैसला कर दिया करते थे; लेकिन जब सीरिया में गये तो अपनी इस रीति को छोड़ दिया, उनसे पूछा गया कि आप मदीना में तो इसके समर्थक थे, तो उन्होंने उत्तर दिया कि सीरिया (शाम) के लोगों में वह

---

1. देखिये अली हसबुल्लाह उसूलु त्तसरीह पृ० 84—85

अमानतदारी नहीं है जो मदीना के लोगों में थी, अतः जब लोगों के चरित्र परिवर्तित हो गये तो आदेश भी परिवर्तित हो जायेगा।

अल्लामा मुस्तफा अल–ज़रक़ा ने अपनी बहुमूल्य पुस्तक *''अल मदखलुल फ़िक़्ही अल आम''* में लिखा है : कभी युग में परिवर्तन इज्तेहाद पर आधारित फ़िक़्ही आदेशों के परिवर्तन का कारण होता है। अर्थात यह परिवर्तन चरित्र में बिगाड़ तक़्वा (अल्लाह का डर) में कमी और इरादे की कमज़ोरी से उत्पन्न होता है, जिसे युग का बिगाड़ कहा जाता है, क्या कभी यह परिवर्तन ढाँचागत परिस्थितियों जीवन के नये संसाधनों, क़ानूनी विवेक के मामले, व्यवस्था का वर्गीकरण, आर्थिक समस्याएँ आदि के उत्पन्न होने के कारण होता है, शेख ने इन दोनो परिस्थितियों के परिवर्तन के अनेक उदाहरण दिये हैं, उनको देखा जा सकता है[1] ।

1. भाराबी के दण्ड में परिवर्तन : युग और परिस्थितियों के परिवर्तन से जो फतवे परिवर्तित हुए उनमें से एक शराबी के दण्ड का प्रश्न भी है। शराब पीने की आदत के लिए रसूलुल्लाह (सल्ल0) के ज़माने में कोई दण्ड निर्धारित नहीं था बल्कि दण्ड के रूप में डाँट–फटकार लगाई जाती थी।

इमाम बुख़ारी ने अक्बा बिन हारिस से रिवायत किया है :

''रसूलुल्लाह (सल्ल0) के पास नईमान या नईमान की सन्तान को लाया गया, वह उस समय नशे की हालत में थे। आप (सल्ल0) को यह बात बहुत नागवार गुजरी और आपने सबको आदेश दिया जो घर

---

1. अल मदखलुल फ़िक़्ही अल–आम भाग 2 पृ0 941–951, दारुल कलम, दमिश्क

में थे कि सब मिलकर उसको छड़ी और जूतियों से मारें, मैं भी उन पीटने वालों में सम्मिलित था[1]।''

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि एक शराबी को हुजूर (सल्ल0) की सेवा में लाया गया। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया इसको मारो, हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं : ''हममे से कुछ लोगों ने अपने हाथ से, कुछ ने अपने जूते से, और कुछ लोगों ने अपने कपड़े से उसको मारना प्रारम्भ किया। वह जब वापस जाने लगा तो किसी ने कहा अल्लाह तुझे अपमानित करे, आप (सल्ल0) ने फ़रमाया ''नहीं ऐसा कहकर उसके विरूद्ध शैतान की सहायता न करो[2]''

अब्दुल रज्ज़ाक ने मुसन्नफ़ में मअमर और इब्ने जरीह से रिवायत किया है :

''इब्ने सहाब से पूछा गया अल्लाह के रसूल ने शराब के दण्ड में कितने कोड़े लगाये। उन्होंने उत्तर दिया कि इसमे अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने कोई दण्ड निर्धारित नहीं किया, आप (सल्ल0) के पास जो शराबी लाया जाता आप उपस्थित लोगों को आदेश देते कि हाथ और जूतों से इसकी पिटाई करें, यहाँ तक कि अल्लाह के रसूल फरमाते कि अब बस करो[3] ''

बल्कि यह भी रिवायत है कि कुछ अवसरों पर रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने शराबी को कुछ भी नहीं किया, उदाहरण के लिए अबू दाऊद और निसाई में ठोस प्रमाण के साथ रिवायत है और उसकी व्याख्या

---

1. बुख़ारी ने अल हुदूद (6775) में रिवायत की है।
2. बुख़ारी ने अल हुदूद (6781) में, अबू दाऊद हुदूद (4478) में, नसई ने सुननुल कुब्रा फिल हदद फिल खम्र (5268) में रिवायत की है इसमे यह जोड़ा है कि आपने फ़रमाया कि इस तरह कहो कि तुझपर अल्लाह की कृपा हो।
3. मुसन्नफ अब्दुल रज़्ज़ाक (277/60)

फतहुल बारी में भी इब्ने अब्बास की रिवायत में उपलब्ध है :

''रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने शराब पीने पर कोई दण्ड निर्धारित नहीं किया, इब्ने अब्बास फरमाते हैं कि एक व्यक्ति ने शराब पी, उसको अल्लाह के रसूल के पास लाये, जब वह हज़रत अब्बास के घर के सामने पहुँचा तो छूटकर हज़रत अब्बास के घर में घुस गया और हज़रत अब्बास से लिपट गया। यह बात रसूलुल्लाह (सल्ल0) को बताई गई तो आप हँस दिये और उसके सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया[1]।''

इमाम तबरी ने एक दूसरे प्रमाण से उल्लेख किया है : ''इब्ने अब्बास फरमाते हैं रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने शराब पीने पर बिल्कुल अन्त में दण्ड दिया। तबूक के युद्ध के अवसर पर अबू अलक़मः ने शराब पी और नशे की हालत में अपना खेमा भूल गये, आप (सल्ल0) ने फ़रमाया कोई व्यक्ति उसका हाथ पकड़कर उसको उसके खेमें में पहुँचा दे[2]।''

---

1. इमाम अहमद ने इसकी रिवायत की है (2963) और इसकी जाँच करने वालो ने कहा है कि इसका प्रमाण कमजोर है, मुहम्मद बिन यजीद बिन रकानः से मात्र दो लोगों ने रिवायत ली है और इब्ने हिब्बान के अतिरिक्त किसी ने उनको विश्वसनीय नहीं लिखा मानो वह अज्ञात रावियों की पंक्ति में हैं और इस हदीस के मूल पाठ में ऐसी बात है जो सहीह प्रमाणों और रिवायतों के विरुद्ध है। जिसमे है कि अल्लाह के रसूल के युग में शराब का दण्ड चालीस कोड़े था। यही हज़रत अबू बक्र के युग में रहा और हज़रत उमर ने इसे अस्सी कोड़े कर दिया। अबू दाऊद ने हुदूद (4476) में नसई ने फिल हदद फिल खम्र (5290) में इसकी रिवायत की है, अल बानी ने कमजोर कहा और अबू दाऊद (966) में कमजोर रिवायत ठहराया है।
2. देखिये फ़तहुल बारी (77/15) यह हदीस सुननुल कुब्रा में बैहकी ने रिवायत की है। अल अशरबः वल हुदूद (315/8) हदीस यह है ''रसुलूल्लाह (सल्ल0) ने शराब पीने पर अन्त में दण्ड दिया। अबू अलकमः बिन अल आवर अस्सलमी तबू के युद्ध के अवसर पर नशे की स्थिति में अपना कमरा भूल गये, यहाँ तक कि कुछ कमरों की कुंडियाँ काट दी। आप (सल्ल0) ने पूछा यह कौन है लोगों ने बताया कि अबू अलकमा हैं और नशे में हैं। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया कोई उठकर इनको इनके

शेष अगले पृष्ठ पर

स्पष्टतः प्रारम्भ में आप (सल्ल0) ने इस सम्बन्ध में नरमी का रवैया अपनाया, चूँकि अभी शराब के हराम होने को अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ था। तत्पश्चात इसका दण्ड मार–पीट और कोड़े मारने का दिया गया, परन्तु दण्ड का निर्धारण नहीं किया गया, चालीस कोड़े भी मारे गये और उससे कम भी मारे गये, बल्कि चालीस से अधिक भी मारे गये, जैसा कि सभी रिवायत करने वालों के समान उल्लेख से अनुमान लगाया जा सकता है।

जब हज़रत अबू बक्र का खिलाफ़त काल आया तो उन्होंने अपने ढंग से विचार और चिन्तन के पश्चात शराब का दण्ड चालीस कोड़े निर्धारित कर दिया जैसा कि इमाम शातिबी ने लिखा है[1] :

''बैहक़ी ने इब्ने अब्बास से रिवायत किया है कि अबू बक्र के खिलाफत काल में शराबियों की संख्या रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग की अपेक्षा अधिक हो गई थी इसलिए हज़रत अबू बक्र ने कहा कि अच्छा है हम उनके लिए दण्ड निर्धारित कर दें, तो आप (सल्ल0) के युग में जो दण्ड

पिछले पृष्ठ का शेष................

ख़ेमे में पहुँचा दे, इमाम बैहकी फ़रमाते हैं कि यदि यह बात सही है तो इब्ने अब्बास के शब्द की शराब के लिए कोई दण्ड निर्धारित नहीं किया गया इसका अर्थ यह होगा कि कथन के रूप में कोई दण्ड निर्धारित नहीं किया गया बल्कि व्यवहारिक रूप से किया गया और यह निरस्त करने योग्य है क्योंकि एक व्यक्ति को अब्बास के घर में प्रवेश करने के कारण दण्ड नहीं दिया गया। यदि यह सही है तो इसका कारण यह भी हो सकता है कि उनके ऊपर शराब पीने का अपराध सिद्ध ही नहीं हुआ था, न साक्ष्य के माध्यम से और न स्वीकार करने के माध्यम से। बस वह रास्ते में झूमते–झामते जा रहे थे। इब्ने अब्बास ने समझा नशे में हैं, बस पकड़ लिया, चूंकि उनका शराब पीना सिद्ध नहीं हुआ था, इसलिए अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने भी उसको छोड़ दिया।

1. अल एतेसाम पृ0 188/2

दिया जाता था उससे एक रास्ता निकाल लिया और लगभग उतना ही दण्ड निर्धारित कर दिया, अतः हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) उन्हें चालीस कोड़े मारा करते थे, उनके पूरे शासनकाल में यही नियम रहा[1]।''

इस रिवायत से पता चलता है कि रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग में शराबी के साथ जो मार—पीट होती वह इस अनुमान से निकट थी। जैसा कि हज़रत अनस (रज़ि0) से रिवायत है :

''रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने लगभग चालीस कोड़े मारे''

अब्दुल रज्ज़ाक ने अबू सईद ख़ुदरी से रिवायत किया है :

''हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) ने शराबी को चालीस जूतियाँ लगवाईं[2]।'' जूतियों से मारना निर्धारित दण्ड में से नहीं है, जब हज़रत उमर का शासनकाल आया तो उन्होंने शराबी के दण्ड के सम्बन्ध में परामर्श किया और कहा कि लोग शराब पीने में बहुत निडर हो गये हैं। हज़रत अली (रज़ि0) ने फ़रमाया कि जब आदमी शराब पी लेता है तो अनर्गल बकता है तो लोगों पर आरोप लगाता है इसलिए शराबी का दण्ड वही निर्धारित करना चाहिए जो झूठा लाछंन लगाने का दण्ड है[3]। तो हज़रत उमर (रज़ि0) ने शराबी के लिए भी लाछंन लगाने का दण्ड अर्थात अस्सी कोड़े निर्धारित किया, इसका अर्थ यह है कि उन लोगो ने कारण को कारण के प्रेरक के स्थान पर रखा और संभावना को

---

1. बैहकी, सुननुल कुब्रा, अल अशरबः वल अतएमः 320/8
2. मुसन्नफ अब्दुल रज़्ज़ाक 379/7
3. मुसन्नफ अब्दुल रज़्ज़ाक 378/7, यह रिवायत इमाम नसई ने सुननुल कुब्रा फिल हदद फिल खम्र 1221/8 में अबू सईद खुदरी से की है। शब्द ये हैं ''रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग में शराबी को चालीस जूतियाँ लगाई गईं, फतहुल बारी (73—74/15)

विवेक के स्थान पर रखकर यह निर्णय दिया कि शराब लाछंन लगाने का माध्यम है जो अनर्गल बकने का परिणाम है। हज़रत उमर (रज़ि0) को इस परामर्श की आवश्यकता इसलिए आ पड़ी कि हज़रत खालिद (रज़ि0) ने हज़रत उमर को लिखा : ''लोग बहुत शराब पीने लगे और शराब की जो सजा निर्धारित है उसको मामूली सजा समझते हैं[1]।'' मुस्लिम और नसाई की हदीसों में आया है कि जब हज़रत उमर ने परामर्श माँगा तो अब्दुरहमान बिन औफ (रज़ि0) ने फ़रमाया कि सबसे हल्का दण्ड अस्सी कोड़े है, तो हज़रत उमर ने इसी को शराबी का दण्ड निर्धारित कर दिया[2]।

मुस्सनफ़ अब्दुल रज्जाक में उबैद बिन उमैर की मुरसल रिवायत हैः ''रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग में शराबी को हाथों से और जूतों से पीटते थे और उसको बुरा–भला कहते थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) के सम्पूर्ण शासन काल और हज़रत उमर के प्रारम्भिक शासनकाल में यही दण्ड जारी रहा। फिर उन्होंने देखा कि लोग इसका अनुचित लाभ ले रहे हैं तो उन्होंने चालीस कोड़े निर्धारित कर दिया, लोग फिर भी नहीं रुके तो उसको साठ कोड़े कर दिया, फिर भी नहीं रुके तो उसको अस्सी कोड़े कर दिया और कहा कि यह सबसे हल्का दण्ड है[3]।''

---

1. अबू दाऊद ने हुदूद (4489) में, हाकिम ने मुस्तदरक (417/4) में रिवायत की है और कहा है कि इस हदीस के प्रमाण सही हैं, परन्तु इसकी जाँच पड़ताल बुखारी और मुस्लिम ने नहीं की है ज़हबी ने भी यही लिखा है। बैहकी ने कुब्रा 320/8 में रिवायत की है। अलबानी ने सहीह अबू दाऊद (37680) में इसको हसन कहा है।
2. फतहुल बारी 67/15
3. मुसन्नफ अब्दुल रज़्ज़ाक (377–78/7)

इस रिवायत से अब्दुर्रहमान की रिवायत जिसमे सबसे कम दण्ड अस्सी कोड़े बताये हैं की पुष्टि होती है, अर्थात कुरआन में उल्लिखित दण्ड अर्थात व्यभिचार और चोरी के दण्ड से भी कम हैं। इमाम बुख़ारी ने साइब बिन यज़ीद से रिवायत किया हैः ''रसूलुल्लाह (सल्ल0) और हज़रत अबू बक्र (रज़ि0) के ज़माने में और हज़रत उमर (रज़ि0) के प्रारम्भिक शासन काल में शराबी को हमारे पास लाया जाता तो हाथों जूतियों और चादरों से उसकी पिटाई करते थे। हज़रत उमर के शासन काल में चालीस कोड़े का दण्ड निर्धारित हुआ जब लोग फिर भी अवज्ञा करने लगे तो अस्सी कोड़े का दण्ड निर्धारित हुआ[1]।''

हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि सहाबा के सामने ऐसी कोई रिवायत नहीं थी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने शराबी के लिए कोई दण्ड निर्धारित किया हो यदि कोई रिवायत मौजूद होती तो इस सम्बन्ध में परामर्श की आवश्यकता न पड़ती और न ही लाछंन लगाने का दण्ड या सबसे हल्के दण्ड पर अनुमान लगाने के माध्यम से दण्ड निर्धारित करने की आवश्यकता पड़ती, अर्थात इस समस्या में उनके सामने कुरआन और सुन्नत से कोई दलील उपलब्ध नहीं थी जो किसी एक बात को निर्धारित करती, इसका क़ानून बदलता रहा और विभिन्न युगों और परिस्थितियों के परिवर्तन से फ़तवा भी परिवर्तित होता रहा। अतः हज़रत उमर (रज़ि0) की ख़िलाफत में इसका स्पष्ट उदाहरण हमे दिखाई देता है कि उन्होंने पहले शराब का दण्ड चालीस फिर साठ फिर अस्सी कोड़े निर्धारित किया जब उन्होने देखा कि लोग इससे रुक नहीं रहे है और

---

1. बुख़ारी ने अल हुदूद (6779) में, नसई ने सुननुल कुब्रा फिल हुदूद (5261) में इसकी रिवायत की है, इसमें क़तादः में अनस की रिवायत में रिवायत करने वालों के यहाँ शब्दों जो अन्तर है उसका भी स्पष्टीकरण विद्यमान है।

निडर हो रहे हैं।

बल्कि हज़रत अली (रज़ि0) से रिवायत है कि उन्होंने कुछ परिस्थितियों में अस्सी कोड़े से भी अधिक दण्ड दिया। उदाहरण के लिए एक रिवायत है : ''नजाशी हारिसी जो कवि था ने रमज़ान के महीने में शराब पी, उसको अस्सी कोड़े लगाये गये फिर उसको बंदी बना लिया, दूसरे दिन निकाल कर बीस कोड़े लगाये और फ़रमाया कि तुमने रमज़ान में रोज़ा छोड़कर इस पवित्र महीने की पवित्रता को नष्ट किया है और अल्लाह तआला के मुक़ाबले तुने निडरता दिखाई इसलिए मैने बीस कोड़े अधिक लगवाये[1]। हज़रत अली के साथ यह भी रिवायत है कि उन्होंने चालीस कोड़े से अधिक के दण्ड को पसन्द नहीं किया।

हज़रत उमर से रिवायत है कि उन्होंने ऐसी स्थिति में कोड़े मारने के अतिरिक्त नगर छोड़ने का दण्ड भी दिया था, चूँकि उसने पवित्र महीने के सम्मान को भ्रष्ट किया था। उनके सामने एक बूढ़े को लाया गया जिसने रमज़ान में शराब पी थी। हज़रत उमर ने फ़रमाया : ''ऐ झुकी कमर वाले बूढ़े तेरा नाश हो क्या तुमने रमज़ान के महीने में यह कृत्य किया जबकि हमारे बच्चे रोज़े से हैं फिर उसको अस्सी कोड़े लगाये और सीरिया की ओर देश से निष्कासित कर दिया[2]''

इससे पता चलता है कि अपराधी की परिस्थिति के अनुसार, अवज्ञा की मात्रा हराम कामों का रिवाज डालने, बार–बार अपराध करने और दण्ड से न डरने के कारण दण्ड में परिवर्तन हो सकता है, और ऐसे व्यक्ति को अपराध का अधिक दण्ड मिलेगा उसकी तुलना में जिसका अपराध लोगों को मालूम न हो।

---

1. मुसन्नफ अब्दुल रज़्ज़ाक (382 / 7), सुननुल कुब्रा बैहकी, फिल अशरिबः 321 / 8
2. मुसन्नफ अब्दुल रज़्ज़ाक (382 / 7), सुननुल कुब्रा बैहकी, फिल अशरिबः 321 / 8

कुछ रिवायतों मे आया है कि यदि हज़रत उमर के पास किसी कमज़ोर व्यक्ति को लाया जाता जिससे यह अपराध हो गया तो उसको चालीस कोड़े मारते[1], उस अपराधी की तुलना में जो घिनौने पाप बार–बार करता। हज़रत उमर बिन अब्दुल (रज़ि0) का कथन है : ''लोगो के अपराधों के अनुपात में दण्ड निर्धारित होगा'' का तात्पर्य यही है।

आश्चर्य की बात यह है कि हज़रत अली बिन अबी तालिब जिन्होंने हज़रत उमर से शराबी का दण्ड अस्सी कोड़े निर्धारित करने के लिए कहा था इसलिए कि शराब पीने के बाद लाछंन लगाने की सम्भावना हो जाती है, उन्होंने अपने मत को वापस ले लिया और इसके बाद चालीस कोड़ों के दण्ड को व्यवहार में लाने लगे, जैसा कि उनसे कुछ रिवायतों में प्रमाणित है। यद्यपि यह रिवायतें कमज़ोर हैं और कुछ लोगों ने इन रिवायतों को अस्वीकार कर दिया है।

मेरा विचार है कि इस मामले में हज़रत अली के कथन को अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है; चूँकि जो दण्ड क़ुरआन और सुन्नत में स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किये गये तो वे मानो अमीर के इज्तेहाद पर छोड़ दिये गये। हो सकता है हज़रत अली ने महसूस किया हो कि कठोर दण्ड के कारण उनके ज़माने में लोग इससे बचने लगे, इसलिये उन्होंने पुनः हल्का करके वही दण्ड निर्धारित कर दिया जो रसूलुल्लाह (सल्ल0) के ज़माने में हज़रत अबू बक्र सिद्दीक के शासनकाल में निर्धारित था।

मुस्लिम और बुखारी की हदीसों में हज़रत अली से रिवायत है

---

1. देखिये अल फत्ह 76/5 और देखिये सुनन दार कुत्नी खण्ड 3 पृ0 157 सैयद अब्दुल्लाह हाशिम यमानी का शोध

कि उन्होंने फ़रमाया : ''मैं हरगिज़ किसी को ऐसा दण्ड नहीं देता हूँ कि वह मर जाये और मैं अपने दिल में कुछ महसूस करुँ सिवाय शराबी के, इसलिए कि यदि शराबी को दण्ड दूँ और वह मर जाये तो उसका मुआवज़ा उसके परिवार वालों को दूँगा, और यह इसलिए कि अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने इसमे कोई दण्ड निर्धारित नहीं किया था इसका तात्पर्य यह है कि इसमें कोई निर्धारित दण्ड तय नहीं था[1]।''

तबरी इब्नुल मुंजीर आदि विद्वानों के एक समूह ने लिखा है कि शराब पीने पर दण्ड निर्धारित नहीं है बल्कि इसमें ताज़ीर (स्वयं प्रशासक द्वारा निर्धारित दण्ड) है; चूँकि सही हदीसों में दण्ड निर्धारित नहीं किया गया है, इसलिए इब्ने अब्बास और इब्ने शहाब से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल0) शराबी को ऐसा दण्ड देते थे कि जो उसकी परिस्थितियों के अनुकूल हो। इब्ने हज़र ने फतहुल बारी में उन लोगों का इन्कार किया है जो इस बात पर इजमाअ नक़ल करते हैं कि शराब पीने पर कोई निर्धारित दण्ड है[2]।

इमाम शौकानी ने अद्दुरुरुल बहीयः के मूल पाठ में लिखा है कि जो व्यक्ति नशीली चीज़ पीये उसको इमाम अपनी इच्छा के अनुसार दण्ड दे, चाहे चालीस कोड़े मारे या कम या अधिक चाहे तो जूतों से पिटवाये। इसके व्याख्याकार नबाव सिद्दीक हसन खाँ ने ''*अल रौज़तुल नदीयः*'' में विभिन्न हदीसों के माध्यम से इसको सिद्ध किया है और लिखा है कि यह प्रशासक द्वारा निर्धारित होने वाले दण्डों में से है[3]।

1. बुख़ारी (6778), मुस्लिम (1707), इब्ने माजा (2569) और अबू दाऊद (4486) तीनों ने हुदूद अध्याय में इसकी रिवायत की है, जबकि नसई ने सुननलुल कुब्रा (5253) में।
2. देखिये फतहुल बारी खण्ड 15 पृ0 79
3. देखिये अर्रौज़तुनन्दीयः व्याख्या अददर्रूल बहीयः खण्ड 2 पृ0 283—84

इमाम बुखारी का भी मत जाहिरी तौर पर यही प्रतीत होता है जैसा कि हाफ़िज इब्ने हज़र ने उल्लेख भी किया है और कहाः उन्होंने अध्याय के शीर्षक में संख्या का उल्लेख नहीं किया और न ही संख्या के सम्बन्ध में कोई बात स्पष्ट रूप से लिखा है[1]

इस सम्पूर्ण वार्ता का निचोड़ यह है कि नशीले पेय पीने वाले के दण्ड के सम्बन्ध में प्रत्येक युग में सहाबा का फ़तवा बदलता रहा, चूँकि इसमें कोई कुरआन और हदीस से स्पष्ट प्रमाण नहीं था, इससे पता चलता है कि कारणों के परिवर्तन से फ़तवा का परिवर्तन अनिवार्य है।

ख. अपहरण : हमारे युग में बहुत से अपराध पाये जाते हैं उनमे से एक अपराध अपहरण भी है यह अत्यन्त घिनौना अपराध है, कुछ मनचले किस्म के लोग इस तरह के कृत्य करते हैं और खुल्लम–खुल्ला मर्यादा भ्रष्ट करते हैं। इसके अनुकूल फ़तवा यह है कि उनको कठोरतम दण्ड दिया जाये, सऊदी अरब के उलमा ने इस अपराध का दण्ड मृत्यु दण्ड भी निर्धारित किया है, यदि कोई व्यक्ति किसी औरत को रास्ते से या गाड़ी आदि में से अपहरण कर ले या बलपूर्वक उठा ले जाये तो इस अपराध के लिए मात्र क़ैद का दण्ड देना पर्याप्त नहीं होगा बल्कि उसकी हत्या कर देनी चाहिए, मैं इस दण्ड का समर्थन करता हूँ, ताकि उनके लिए कठोर चेतावनी हो जो हराम किए हुए कर्मों में लिप्त होते हैं। ''किसी मुसलमान के मामले में न तो ये निकटता का ध्यान रखते हैं और न किसी समझौते की जिम्मेदारी का।''

1. देखिये फतहुल बारी खण्ड 15 पृ० 79–80

ग. नशीली चीज़ों का व्यापार : इसी प्रकार वह लोग भी है जो नशीली वस्तुओं का व्यापार करते हैं, ये तो मानो मौत के सौदागर हैं। ये जंगली लोग ताकत, रिश्वत, और बहानों के माध्यम से ऐसे समाजों में जो जागृत नहीं है हशीश, अफीम और हेरोईन और इस प्रकार की अन्य घातक वस्तुओं को फैलाते हैं, ऐसे लोगों को मृत्युदण्ड देना अनिवार्य है, इसलिए कि जब कोई किसी की हत्या करता है तो हम उसकी हत्या का फतवा देते हैं और कसास (अपराध के समान दण्ड) लेते हैं, जैसा कि कुरआन में है : ''बुद्धि और समझ रखने वालों, तुम्हारे लिए कसास में जीवन है, आशा है कि तुम इस क़ानून की अवज्ञा करने से बचोगे।'' (सूरः बकर : 179)

तो जो व्यक्ति पूरी क़ौम को क़त्ल कर दे और मात्र लाखों डालर कमाने के लिए पूरे–पूरे समाज को क़त्ल कर डाले और इसका बिल्कुल ध्यान न रखे कि इस तरह एक घातक विष समाज में फैलता है जो जवानों को कुचल देता है, ऐसे व्यक्ति का कठोरतम दण्ड होना ही चाहिए, अतः जब मुझसे कुछ वर्ष पहले इस सम्बन्ध में पूछा गया तो मैने उत्तर दिया कि उनको वह दण्ड मिलना चाहिए जो अल्लाह के विरूद्ध युद्ध करने वालों का दण्ड होता है।

''जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और जमीन में इसलिए भाग–दौड़ करते फिरते हैं कि फसाद फैलायें, उनका दण्ड यह है कि क़त्ल किए जायें या सूली पर चढ़ायें जायें या उनके हाथ और पैर परस्पर विपरीत दिशाओं में काट डाले जाये।''(सूरः माइदा : 33)

इसलिए आवश्यक है कि उनको वही दण्ड दिया जाये जो अल्लाह और उसके रसूल से युद्ध करने वालों और जमीन में फ़साद

फैलानों वालों का दण्ड है; बल्कि यह लोग डाकूओं से भी अधिक खतरनाक हैं इसलिए कि डाकूओं का खतरा सीमित है और इनका खतरा असीमित है, इसी प्रकार लोगों के चरित्र का मामला है, यदि चरित्र परिवर्तित हो जाये तो इसके कारण फतवा भी परिवर्तित हो जायेगा।

घ. अनिवार्य वसीयत : लोगों के चरित्र का परिवर्तन ही है कि जिसने मिस्र, सीरिया और कुछ अरब देशों में फ़कीहों को इस बात पर उकसाया कि वह सरकार को अनिवार्य वसीयत का क़ानून पारित करने का ऐसा फ़तवा दें कि यदि किसी व्यक्ति का बेटा उसके जीवन में मर गया हो और उसके बच्चे हों तो उन बच्चों के लिए वसीयत अवश्य करे, क्योंकि उनके दादा की मृत्यु के पश्चात अपने चाचाओं की मौजूदगी में विरासत में उनको हिस्सा नहीं मिलेगा और वह विरासत से वंचित होंगे, एक तरफ अनाथपन, और दूसरी तरफ विरासत से वंचित होना मानों दो–दो विपत्तियाँ उत्पन्न हो जायेंगी।

प्राचीन काल में इस संकट का अधिक एहसास नहीं होता था इसलिए कि चाचा अपने भाईयों और बहनों की सन्तान को अपनी सन्तान की तरह समझते थे, वह उनके साथ पर्याप्त स्नेह और प्यार का व्यवहार करते, परन्तु हमारे युग में व्यक्तिगत और भौतिक स्वार्थ बढ़ गये हैं, और प्रत्येक व्यक्ति अपना–अपना पुकार रहा है, तो जो पोते दादा की विरासत में हिस्सा पाने से वंचित हो जायेंगे, वह एक तरह से नष्ट हो जायेंगे, इसलिए उनके दादा के लिए अनिवार्य है कि वह अपने पोतों के लिए वसीयत करें, क़ुरआन में है : ''तुम्हारे लिए अनिवार्य किया गया है

कि जब तुममे से किसी की मृत्यु का समय निकट आये और वह अपने पीछे पूँजी छोड़ रहा हो तो माँ–बाप और सम्बन्धियों के लिए उचित ढंग से वसीयत करे, यह हक़ है डर रखने वालों पर।''

(सूरः बक़रः : 180)

कुछ हमारे पूर्वज उलमा का मत है कि वारिसों के अतिरिक्त रिश्तेदारों के लिए वसीयत करना अनिवार्य है, चूँकि वारिस के लिए तो वसीयत नहीं हो सकती और आदमी के लिए वसीयत का सबसे अधिक हकदार उसका पोता या नाती है, यदि उनके माँ–बाप उनके जीवन में मृत्यु को प्राप्त हो गये, इसलिए उन देशों में वह क़ानून बनाया गया जिसको अनिवार्य वसीयत का क़ानून कहते हैं

च. खुलअ के लिए पति को विव□ा करना : इसी प्रकार पति को खुलअ के लिए विवश करने का क़ानून है, यदि कोई महिला अपने पति के साथ न रहना चाहे और उसको सहन न कर सके, और उससे छुटकारा पाने के लिए पति द्वारा दिये गये सम्पूर्ण सामान पति को हवाले करने को तैयार हो, ताकि वह सभी सामान उसकी ओर से मुआवज़ा बन सके और वह अपने पति से स्वतंन्त्र हो सके जैसा कि इस आयत में है : ''तो उन दोनों के बीच यह मामला तय हो जाने में कोई हानि नहीं कि महिला अपने पति को कुछ मुआवज़ा देकर अलगाव प्राप्त कर ले।

(सूरः बक़रः 229)

प्राचीन काल में तो यह रिवाज था कि यदि कोई महिला किसी पुरुष के साथ रहने के लिए तैयार न हो तो उस व्यक्ति का ईमान और उसका आत्म सम्मान यह माँग करता था कि वह भी उस महिला के साथ न रहे; परन्तु हमारे युग में ऐसा हो गया है कि लोग महिला को

उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने साथ रखने पर विवश करते हैं। इसका उद्देश्य तो कभी उससे बदला लेना होता है तो कभी उसको सताना, हालाँकि इन दोनों के लिए उचित यह है कि पति मुआवज़ा लेकर उसे स्वतन्त्र कर दे, हो सकता है कि अल्लाह तआला इन दोनों को इससे अच्छा विकल्प प्रदान कर दे।

छ. अचल सम्पत्तिओं और विवाह का पंजीकरण : लोगों का नैतिक पतन, पदों का सम्मान न करना और हराम कार्य करने के दुस्साहस के कारण कुछ सरकारों ने अचल सम्पत्तियों का पंजीकरण अनिवार्य कर दिया है ताकि लोगों की पूँजी सुरक्षित रहे और लोग उन पर झूठे दावे दायर न करें, जिसमें झूठे गवाहों और कभी–कभी न्यायाधीशों को खरीदा जाता है।

इसी प्रकार निकाह के पंजीकरण को अनिवार्य करने का मामला है ताकि दम्पति के अधिकारों की रक्षा हो सके और साक्ष्य और नस्ल की रक्षा आदि के जो नियम उस पर लागू होते हैं उनकी भी रक्षा हो सके; चूँकि इस बात का अन्देशा है कि दम्पति में से कोई एक दूसरे के दाम्पत्य से इन्कार कर दे, या दोनों में से कोई एक दूसरे से निकाह हो जाने का दावा दायर कर दे, विशेष रूप से जब इस दावे की पृष्ठभूमि सांसारिक दौलत और विरासत आदि का मामला हो, जो लोगों को झूठी गवाही का सहारा लेने पर उभारते हैं।

(3)
परिस्थितियों का परिवर्तन

तीसरा कारण परिस्थितियों का परिवर्तन है, इसका उल्लेख भी हमारे पूर्वज फ़क़ीहों ने किया है। निर्धनता और सम्पन्नता की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं बीमारी की हालत दूसरी होती है और स्वास्थ्य की स्थिति दूसरी, यात्रा की स्थिति ठहराव की स्थिति से भिन्न होती है, युद्ध की स्थिति शान्ति की स्थिति से अलग होती है, और भय की स्थिति और निर्भयता की स्थिति में अन्तर है, क्षमता की स्थिति और दुर्बलता की स्थिति भिन्न है, बुढ़ापे की हालत जवानी की हालत और अनपढ़ की हालत शिक्षित की हालत से भिन्न होती है। सफल मुफ्ती वह है जो इन परिस्थितियों को ध्यान में रखे और एक स्थिति से दूसरी स्थिति का भेद स्पष्ट कर सके, यदि परिस्थितियाँ बदल जायें तो भी एक क़ानून और एक ही दृष्टिकोण पर अटल न रहे।

मक्के में रसूलुल्लाह (सल्ल0) अपने सहाबा को, अपने बचाव के लिए लड़ने के लिए भी हथियार लेकर चलने से मना करते थे, हालाँकि वह आप (सल्ल0) के पास लुटे पिटे और घायल स्थिति में आते थे। आप (सल्ल0) उनको धैर्य रखने और हाथ रोके रखने की हिदायत करते थे। जब मदीने की तरफ हिजरत हुई और मुसलमानों का अपना एक राज्य बन गया तब अल्लाह तआला ने उनको युद्ध करने की अनुमति दे दी

और अल्लाह उनकी सहायता की पूरी क्षमता रखता है [1]।

इसी प्रकार अल्लाह के रसूल (सल्ल0) सहाबा की व्यक्तिगत परिस्थितियों की रियायत करते थे और कमज़ोरों के मामले में ऐसी ढ़ील का रवैया अपनाया करते थे जो ताकतवर लोगों के लिए नहीं था, देहात के लिए भी ऐसी आसानियाँ थीं जो शहर में रहने वालों के लिए नहीं थीं, उदाहरण के लिए एक प्रसिद्ध रिवायत है कि एक देहाती ने मस्जिद में पेशाब कर दिया, सहाबा उसकी तरफ झपटे, आप (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''नहीं, उसको पेशाब कर लेने दो, इसके बाद उस पर एक डोल पानी बहा दो, तुम आसानी पैदा करने वाले बनाकर भेजे गये हो, कठिनाई पैदा करने वाले नहीं[2]''

ऐसा भी होता है कि कोई मुफ्ती किसी प्रश्नकर्त्ता को किसी एक समस्या में कठोरता का मामला करने का आदेश देता है और दूसरे

---

1. नसई ने किताबुल जेहाद (3086) में, हाकिम ने मुस्तदरक किताबुल जेहाद (76/2) में अब्दुल रहमान बिन औफ से रिवायत की है, उन्होने कहा है कि यह हदीस इमाम बुख़ारी की शर्तो पर आधारित है परन्तु शेखैन ने इसकी पड़ताल नहीं की, बैहकी ने किताबुस्स सेअर (11/9) में इब्ने अब्बास से रिवायत की है, अलबानी ने सहीह नसई में इसके प्रमाणों को सही बताया है (2891) पूरी हदीस इस प्रकार है बल्कि मैं अब्दुल रहमान बिन औफ और उनके कुछ साथी रसूलुल्लाह (सल्ल0) के पास आये और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल ! जब हम मूर्ति पूजक थे तो सम्मानपूर्वक रहते थे, इस्लाम में ईमान लाने के पश्चात हम अपमानित हो गये? आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया कि मुझे क्षमा करने का आदेश दिया गया है, इसलिए तुम युद्ध मत करो, जब अल्लाह ने हमको मदीना पहुँचा दिया तो युद्ध की अनुमति मिल गयी तो वह रुके रहे इस पर यह आयत अवतरित हुई ''क्या तुम उन लोगो को नहीं देखते जिनसे कहा गया था कि अपने हाथों को रोके रखो और नमाज़ स्थापित करो।'' (अल निसा : 77)
2. बुख़ारी ने वुज़ू (220) में, अहमद ने मुसनद (7255) में, अबू दाऊद ने अत्तहारः (380) में तिर्मिजी ने अत्तहारः (147) में नसई ने अत्तहारः (56) में हज़रत अबू हुरैरा।

आदमी के लिए उसी मामले में नरमी का रवैया अपनाने की नसीहत करता है, एक पर सख़्ती करता है, दूसरे के साथ आसानी करता है, और ऐसा इसलिए होता है की दोनो की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं, उदाहरण के लिए मुसनद अहमद की एक रिवायत है, : ''नबी (सल्ल0) ने एक प्रश्नकर्त्ता को रोज़े की हालत में (अपनी पत्नी को) चूमने की अनुमति दे दी और दूसरे को मना कर दिया, पूछने पर पता चला कि एक प्रश्न करने वाला बूढ़ा था उसको अनुमति दे दी, और दूसरा जवान था, उसको मना कर दिया। आप (सल्ल0) कभी—कभी एक ही प्रश्न के दो प्रश्नकर्त्ताओं को अलग—अलग उत्तर दिया करते थे। इसमें वास्तव में आप (सल्ल0) प्रश्नकर्त्ता की परिस्थितियों की रियायत करते थे और प्रत्येक प्रश्नकर्त्ता को वह उत्तर देते जो उसकी परिस्थितियों के अनुकूल होता[1]।

---

1. हदीस यह है कि इमाम अहमद ने जाबिर बिन अब्दुल्लाह से और उन्होंने अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत की है कि एक दिन मैं वशीभूत हो गया और मैंने रोज़े की हालत में अपनी पत्नी को चूम लिया। मैं नबी (सल्ल0) के पास गया और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल आज तो मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी मैने रोज़े की हालत में अपनी पत्नी को चूम लिया। आप (सल्ल0) ने उत्तर दिया कि यदि रोज़े की हालत में पुल्ली करते तो तुम्हारा क्या विचार होता। मैने कहा कुछ नहीं होता, तो आपने फ़रमाया कि ऐसा ही इसका मामला है। अहमद (138) इसकी जाँच—पड़ताल करने वालो ने कहा है कि इसका प्रमाण इमाम मुस्लिम की शर्तों के आधार पर है यह हदीस सही है। इसकी रिवायत करने वालो में अब्दुल मलिक बिन सईद अंसारी के अतिरिक्त शेखेन के रिजाल में से हैं। वह मात्र इमाम मुस्लिम के रावी हैं। इस रिवायत को अबू दाऊद ने सियाम (2385) और इब्ने हिब्बान ने सियाम (3544) में रिवायत की है। इमाम अहमद की एक दूसरी हदीस है जो अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस से रिवायत है कि हम रसूल्लुल्लाह (सल्ल0) के पास थे, एक जवान आदमी आया और उसने पूछा कि क्या मैं रोज़े की हालत में चुम्बन कर सकता हूँ। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया नहीं, फिर एक बूढ़ा आदमी आया उसने भी यह

शेष अगले पृष्ठ पर

इसी प्रकार फ़कीह सहाबा ने भी फ़तवा देने में इसी परिपाटी को अपनाया, अतः इब्ने अब्बास (रज़ि0) के पास एक व्यक्ति आया और उसने पूछा : ''ऐ रसूलुल्लाह के चचेरे भाई? क्या हत्यारे की तौबा स्वीकार हो सकती है? हज़रत इब्ने अब्बास ने उसको थोड़ी देर घूर कर देखा और उत्तर दिया, ''नहीं! हत्यारे की तौबा स्वीकार नहीं हो सकती''[1]।

पिछले पृष्ठ का शेष.....................

सवाल किया। आप (सल्ल0) ने फ़रमाया हाँ। हमने एक–दूसरे की तरफ देखा तो आप (सल्ल0) ने स्पष्ट किया कि मैं समझ गया कि तुमने क्यों एक दूसरे की तरफ देखा बूढ़ा आदमी अपने आप पर नियन्त्रण रख सकता है। (अहमद 6739) इसकी पड़ताल करने वालो ने लिखा है कि रावी सहाबी में मतभेद के कारण यह हदीस कमज़ोर है। शेख अहमद शाकिर ने लिखा है कि इसका प्रमाण सही है। हाँ इसमें इब्नुल हैअः हैं। अलबानी ने इसको अस्सहीहः (1606) में सही लिखा है। (इसके अतिरिक्त देखिये हमारी पुस्तक फिक्हुस सियाम पृ0 89)

1. हज़रत इब्ने अब्बास से रिवायत है कि उनसे किसी प्रश्नकर्त्ता ने पूछा ऐ अब्बास के बेटे क्या हत्यारे की तौबा स्वीकार हो जाती है ? इब्ने अब्बास ने आश्चर्य से पूछा तुम क्या कह रहे हो ? उसने फिर अपना प्रश्न दोहराया इब्ने अब्बास ने फिर पूछा, उसने फिर उत्तर दिया दो या तीन बार ऐसा हुआ। इब्ने अब्बास ने फ़रमाया कि मैने तुम्हारे नबी से सुना है कि यदि कोई किसी का कत्ल कर दे तो क़यामत के दिन जिस व्यक्ति की हत्या हुई थी एक हाथ में अपना सिर और दूसरे हाथ में हत्यारे को लेकर आएगा और उसकी धमनियों से खून टपक रहा होगा। वह अल्लाह के आसन के सामने आकर कहेगा ऐ अल्लाह इस व्यक्ति ने मेरी हत्या की थी। अल्लाह तआला हत्यारे से फरमाएगा तुम अभागे हो फिर उसको जहन्नम में फेक दिया जायेगा, इसको तिर्मिजी ने संक्षेप में बयान किया है। (तफ्सीरुल क़ुरआन : 3032) और कहा है कि यह हदीस हसन ग़रीब है। तबरानी ने इसको (कबीर 306/10) और (औसत 386/4) में रिवायत की है। हैशमी ने कहा कि तिर्मिजी ने इसको अन्त से संक्षिप्त कर दिया है और तबरानी ने अवसत में इसको रिवायत की है इसकी रिवायत करने वाले सही हैं अलबानी ने सहीह अत्तरग़ीब वत्तरहीब में इसको सही कहा है। (2697)

जब वह आदमी चला गया तो इब्ने अब्बास के साथियों ने पूछा कि हम तो आप से इसके अतिरिक्त भी उत्तर सुनते रहे हैं। तो इब्ने अब्बास ने उत्तर दिया कि मैने देखा कि वह क्रोध से लाल हो रहा था, संभवतः किसी मोमिन की हत्या का इरादा रखता हो[1]।

इब्ने अब्बास ने इस एहसास के कारण उसको यह उत्तर बताया कि हत्यारे की तौबा स्वीकार नहीं होती, यदि कोई व्यक्ति किसी को क़त्ल करके आता और यह बात पूछता तो वह कहते कि तौबा का दरवाज़ा खुला है। अल्लाह तआला तमाम अपराधों को क्षमा कर देता है।

''ऐ नबी कह दो कि मेरे बन्दो! जिन्होने अपने आप पर अत्याचार किया है, उसकी दया से निराश मत हो जाओ, निस्सन्देह अल्लाह सारे पाप क्षमा कर देता है, वह तो ग़फ़ूर रहीम (क्षमा करने वाला दयावान) है।'' (सूरः अल ज़ुमर : 53)

परन्तु उस व्यक्ति ने अपना क्षल–कपट छिपा रखा था अपने भाई की हत्या करना चाहता था और पहले से फतवा लेने का इरादा रखता था तो इब्ने अब्बास (रज़ि0) ने उसका रास्ता बन्द कर दिया,

---

1. अब्द बिन हमीद ने सअद बिन उबैदा से रिवायत की है कि इब्ने अब्बास कहते थे कि यदि कोई व्यक्ति किसी मोमिन की हत्या कर दे तब भी उसकी तौबा है। एक व्यक्ति आया और उसने यह प्रश्न किया । इब्ने अब्बास ने उत्तर दिया कि नहीं उसको आग मिलेगी। जब वह व्यक्ति चला गया तो इब्ने अब्बास के साथियों ने पूछा कि आप तो इस तरह नहीं फ़तवा देते थे। आप जो फ़तवा देते थे वह तो यह था कि उसकी तौबा भी स्वीकार होगी आज का क्या मामला है। इब्ने अब्बास ने फ़रमाया कि यह व्यक्ति क्रोध में है। मेरे विचार में यह किसी मोमिन की हत्या करना चाहता है। इसके पीछे लोगों को भेजा तो ऐसा ही पाया (अददुर्रूल मंसूर 629/2), मुसन्नफ इब्ने अबी शैबा, किताबुदिदयात (435/5), इब्ने हजर ने तलखीसुल हबीर में लिखा है कि इसके रिवायत करने वाले विश्वसनीय हैं (187/4)

इसलिए उलमा ने कहा है कि किसी अपराध में लिप्त होने से पहले का फ़तवा लिप्त होने के बाद के फ़तवे से भिन्न होगा।

मैं अपने फतवा में भी इसको ध्यान में रखता हूँ, उदाहरण के लिए यदि कोई मुझसे तलाक का मसला पूछता है और कहता है कि इसका शरई क़ानून क्या है कि अगर मैं अपनी पत्नी से यह कहूँ कि यदि यह काम कर दिया या यह काम न करो तो तुम्हारे ऊपर तलाक, मैं उससे पूछता हूँ कि क्या ऐसा हो चुका है, यदि वह कहता है कि अभी नहीं हुआ, तो मैं उससे कहता हूँ कि अच्छा जब हो जाये तब आना, यदि वह कहता है कि ऐसा हो चुका है तो फिर उसके लिए समाधान तलाश करता हूँ कि ऐसी स्थिति के लिए पूर्वज उलमा ने इब्ने तैमिया और इब्ने क़य्यिम आदि ने कोई उत्तर दिया है? इसी तरह यह भी प्रयास करता हूँ कि हमारे महान फ़िक़्ही विरासत में यदि इसके अनुकूल कोई स्थिति मिल जाये तो वह बयान करके उसको मसला बता दूँ और उसको कठिनाई से निकालूँ।

मेरा मत यह है कि जो मुसलमान ग़ैर मुस्लिम समाज में अल्पसंख्यक के रूप में रहते है, उनकी परिस्थिति उन मुसलमानों से भिन्न होगी जो इस्लामी समाज में रहते हैं। अतः अल्पसंख्यक के रूप में रहने वालों की आवश्यकता यह है कि उनके साथ आसानी और सरलता का रवैया अपनाया जाये ताकि वह समाज में इस्लाम के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकें।

परिस्थितियों के परिवर्तन में फ़तवा में परिवर्तन का यह उदाहरण विदेशों की नागरिकता स्वीकार करना भी है, इस सम्बन्ध में कुछ लोग जैसे इमाम हसनुल बन्ना आदि का रवैया बहुत कठोर था, वह इसको पूर्ण रूप से हराम कहते थे और इसको बड़े पाप में गिना करते थे, बल्कि

इसके करने वाले को स्पष्ट कुफ्र और इस्लाम से फिरने का अपराधी ठहराते थे। इमाम हसनुल बन्ना का कथन है कि मुसलमान का इस्लामी राज्य के अतिरिक्त किसी अन्य विदेशी राज्य की पूर्णतः नागरिकता अपनाना ही अल्लाह के क्रोध और कठोर यातना का कारण है, उनका तर्क अबू दाऊद की रिवायत है। हज़रत अनस (रज़ि0) फ़रमाते हैं रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने फ़रमाया : ''जो व्यक्ति अपने पिता के अतिरिक्त किसी और की तरफ अपनी नस्ल को जोड़ा या किसी और अभिभावक की ओर अपना सम्बन्ध जोड़ा तो उस पर महाप्रलय के दिन तक लगातार फटकार लगती रहती है[1]।''

इस आयत में भी यही भाव निहित है : ''मोमिन को छोड़कर क़ाफिरों को अपना दोस्त कदापि न बनाये।''(सूरः आले इमरान 28)

तो परिस्थतियाँ यदि ऐसी हों जैसे आज हैं अर्थात नागरिकता बदलने से कुछ ऐसी परिस्थतियाँ और कुछ ऐसे अधिकार अनिवार्य होते हों जो दूसरे मुसलमानों से आपसी सम्बन्ध व प्रेम को मिटा देते हों, उनके परस्पर सम्बन्धों को नष्ट कर देते हों और ऐसी स्थिति सामने आती हो कि मुसलमान काफ़िरों की पंक्ति में खड़े होकर अपने ही मुसलमान भाईयों से लड़ने पर मजबूर हो जायें तो अच्छा मुसलमान वह है जो उन देशों की नागरिकता छोड़ दे।

''और जो कोई अल्लाह के रास्ते में हिजरत करेगा, वह ज़मीन में शरण लेने के लिए बहुत जगह और समय व्यतीत करने के लिए बड़ी गुंजाइश पायेगा[2]।'' (सूर निसा : 100)

1. अबू दाऊद अल अदब (5115) अनस से, अलबानी ने इसकी पुष्टि की है सहीहुल जामेअ (5987)
2. इख्वानुल मुस्लिमीन का मुख पत्र वर्ष 4 संख्या 4 पृष्ठ 11, दिनाँक 14 सफर 1355 हिजरी तद्नुसार 5 मई 1936, इमाम हसनुल बन्ना की विरासत से उद्धरित भाग 4 फ़िक़्ह वल फ़तवा 229–230

मेरे विचार इस सम्बन्ध में और अधिक कठोर हैं। मेरे विचार में कभी–कभी ग़ैर इस्लामी देश की नागरिकता अपनाना अल्लाह और रसूल से विश्वासघात करने जैसा है, उदाहरण के लिए युद्ध की स्थिति में किसी मुसलमान का दारुल इस्लाम को छोड़कर दारुल हर्ब में जाना, इसलिए ट्यूनिस के उलमा ने ट्यूनिस पर फ्राँसीसी अधिकार के समय फ़तवा दिया था कि फ्राँस नागरिकता प्राप्त करने वाले इस्लाम से फिरे हुए और इस्लाम की परिधि से निष्कासित हैं, इसलिए वहाँ की नागरिकता प्राप्त करने का अर्थ है कि उसने अपने देशप्रेम को बेच दिया और साम्राज्यवाद से प्रेम कर लिया, इसलिए उलमा ने उनको कुफ्र का फतवा दिया। इस तरह के फतवे साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध एक हथियार और उनका मुक़ाबला करने का एक माध्यम भी है और जेहाद के हथियारों में से एक हथियार है, परन्तु सामान्य परिस्थितियों में बहुत से मुसलमानों को ग़ैर मुस्लिम देशों की तरफ यात्रा करने की आवश्यकता होती है, उनकी सुरक्षा के रूप में उनको नागरिकता प्राप्त होती है। प्रशासन उनको निष्कासित नहीं कर सकता, उनको विधान सभाओं में, नगर परिषदों में और राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने का अधिकार प्राप्त होता है, इसके माध्यम से उन देशों में उन मुसलमानों को शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। प्रत्याशी उनका ध्यान रखते और उनका वोट प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, इसलिए किसी देश की नागरिकता न तो अपने आप में भलाई है न बुराई, बल्कि उन देशों की नागरिकता में यदि भलाई और बुराई की कोई कसौटी है तो साधारण मुसलमानों का हित या उनकी हानि है।

न्याय की माँग यह है कि प्रोफेसर हसनुल बन्ना के फ़तवों को उनकी अपनी परिस्थितियों के दायरे में रखना आवश्यक है। कभी–कभी

उन्होंने कुछ मामलों में कठोरता बरती है जिसमें आज हम आसानी का रास्ता अपनाते हैं; क्योंकि दुनिया विकसित हो गई है, आज–कल लोग एक दूसरे के निकट आ गए हैं और कुछ देश दूसरे देशों पर निर्भर हो गये हैं और उनकी आवश्यकताएँ दूसरे देशों से जुड़ गई हैं, और कुछ अत्याचारी साम्राज्यवादी देशों के चरित्र परिवर्तित हो गये हैं, और वह अब मुसलमानों के समर्थक और सहयोगी बन गये हैं, और इमाम हसनुल बन्ना ने जो कुछ लिखा था, वह अपनी नौजवानी की आयु में लिखा था। उस समय क्रान्तिकारी उत्साह अधिक था आयु का भी कुछ तकाज़ा होता है और अपने युग का भी एक प्रभाव होता है, उस समय वह उनका मत था, तथापि ज्ञान के मामले में कोई बड़ा नहीं होता प्रत्येक व्यक्ति के विचार को स्वीकार भी किया जा सकता है और अस्वीकार भी किया जा सकता है, सिवाय रसूलुल्लाह (सल्ल0) के पवित्र मुँख से निकले हुए शब्दों के। क्योंकि वह अपनी इच्छा से कुछ नहीं बोलते बल्कि वह जो कुछ बोलते हैं वह अल्लाह की वाणी होती है।

(4)
रीति–रिवाज का परिवर्तन

फ़तवा के परिवर्तन के कारणों में एक कारण रीति–रिवाज का परिवर्तन भी है अर्थात वह प्राचीन रीति–रिवाज जिसके आधार पर पुराना फ़तवा दिया गया था बदल जाये। फ़तवा के परिवर्तन का यह कारण प्रारम्भिक उलमा ने भी बयान किया है इसका उल्लेख इमाम क़राफ़ी मालिकी, इब्ने कय्यिम हम्बली और इब्ने आबिदिन शामी, हनफी आदि ने किया है।

रीति–रिवाज का अर्थ : रीति–रिवाज ऐसा कथन या कर्म है कि लोगों का एक समूह जिसका पालन करता आया हो और वह उससे आपस में परिचित भी हो, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, इसमें कोई सन्देह नहीं की बहुत से रीति–रिवाज अच्छे और पसन्दीदा होते हैं और बहुत से रीति–रिवाज बुरे और घृणित होते हैं।

यह बात सभी को मालूम है कि इस्लामी फ़िक़्ह में रीति–रिवाज को महत्व प्राप्त है और कुछ सीमाओं और शर्तों के साथ उनको क़ानून का आधार बनाया जाता है। इन शर्तों में से एक महत्वपूर्ण शर्त यह है कि वह रीति–रिवाज किसी कुरआन और सुन्नत के प्रमाण या क़ानून के विरूद्ध न हो, रीति–रिवाज के विश्वसनीय होने का वास्तविक कारण यह है कि रीति–रिवाज को लोग इसलिए प्रचलित करते हैं कि उनको इनकी आवश्यकता होती है। इसपर उनके हित निर्भर होते हैं; इसलिए इस्लामी फ़िक़्ह में भी लोगों की इस आवश्यकता को स्वीकार किया गया

है और इसीलिए रीति–रिवाज को इस्लामी क़ानून का गौड़ स्रोत माना गया है किसी कवि ने इस सम्बन्ध में कहा है :

''शरीअत में रीति–रिवाज पर भी भरोसा किया जाता है इसलिए कभी–कभी उसपर क़ानून का दारोमदार होता है।''

यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जिस रीति–रिवाज पर क़ानून बनाये गये हैं, और जिस पर प्राचीन क़ानून संकलित हुए यदि वह परिवर्तित हो जाये तो क्या पूर्व क़ानून फिर भी जारी रहेगा अथवा रीति–रिवाज के परिवर्तन से परिवर्तित हो जायेगा?

विभिन्न मसलकों के उलमा ने लिखा है कि क़ानून––या दूसरे शब्दों में फ़तवा––रीति–रिवाज के परिवर्तित हो जाने से परिवर्तित हो जायेगा, अर्थात प्राचीन फ़तवा जो पहले के रीति–रिवाज पर आधारित था, उसका अब जारी रखना वैध नहीं रहेगा।

इमाम शहाबुद्दीन क़राफ़ी ने अपनी किताब *'अल–अहकाम'* में उन्तीसवें प्रश्न के अन्तर्गत लिखा है : शाफई और मालिकी आदि के मसलक में उल्लिखित उन नियमों के सम्बन्ध में उचित क्या है जो अपने युग के रीति–रिवाज पर आधारित थे, वह रीति–रिवाज बदल कर प्राचीन रीति–रिवाज के विपरीत हो जाये तो क्या फ़क़ीहों की किताबों में लिखे हुए फ़तवे भी बदल जायेंगे और नयी रीतियों के अनुसार नया फ़तवा दिया जायेगा या यह कहा जायेगा कि हम मुक़ल्लिद (अन्धानुकरण करने वाले) हैं और हमारे अन्दर इज्तेहाद की योग्यता नहीं है इसलिए हम उसी के अनुसार फ़तवा देंगे जो किताबों में लिखा है? (फिर इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं) रीति–रिवाज पर आधारित नियमों का रीति–रिवाज बदल जाने के बाद भी उसी प्रकार जारी रखना उलमा के मतैक्य (इज्माअ) के विरूद्ध है और दीन (धर्म) से अनभिज्ञता है?

बल्कि शरीअत का प्रत्येक वह क़ानून जो रीति–रिवाज पर आधारित हो वह रीति–रिवाज के बदल जाने से बदल जायेगा और परिवर्तित रीति–रिवाज की रोशनी में नया आदेश दिया जायेगा, यह परिवर्तन अन्धानुकरण करने वालों के इज्तेहाद के नवीनीकरण पर नहीं होगा शर्त यह है कि उनके अन्दर इज्तेहाद की योग्यता हो; यह ऐसा नियम है जिसमे प्रारम्भिक उलमा ने इज्तेहाद किया और उस पर उनका मतैक्य है, हम इस सम्बन्ध में बिना किसी नये इज्तेहाद के उनका अनुसरण करते हैं[1]।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि इमाम शहाबुद्दीन क़राफ़ी ने इस परिवर्तन को मात्र उन नियमों में लागू किया है जो रीति–रिवाज पर आधारित हों, इसमें वह क़ानून सम्मिलित नहीं है जिनका आधार कुरआन और हदीस की ठोस बुनियादों (नुसूफ) पर हो।

इमाम क़राफ़ी ने इस विषय पर अपनी किताब 'अल–फ़ुरूक़' (अन्तर) में 28वें अन्तर के अन्तर्गत दूसरी बार वार्ता की है और उसमें बलपूर्वक लिखा है कि फ़कीहों और मुफ्तियों के लिए निवार्य है कि वह रीति–रिवाज के परिवर्तन पर ध्यान रखें जो युग और देश के परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं, जो भी नया रीति–रिवाज बने उसको स्वीकार करें और जो भी रीति–रिवाज निरस्त हो जाये उसे निरस्त कर दें। जीवन पर्यन्त मात्र उससे चिमटे न रहें जो किताबों में लिखा हुआ है; बल्कि यदि कोई फ़तवा पूछने वाला दूसरे क्षेत्र से आये और उसके क्षेत्र का रीति–रिवाज यहाँ के रीति–रिवाज के विरूद्ध हो और उस रीति–रिवाज के विरुद्ध हो जो तुम्हारी किताबों में है तो उससे उसके क्षेत्र का रीति–रिवाज मालूम करके उसी के अनुसार फ़तवा दे, यही

---

1. अल इहकाम फ़ी तमईज़िल फतावा वल अहकाम पृ० 231 शोध शेख अबू गदः

वास्तविक हक़ है, दीन के मामले में लिखित बातों का दृढ़तापूर्वक अनुसरण न सिर्फ पथभ्रष्टता बल्कि उलमा और पूर्वजों के उद्देश्य से अनभिज्ञता का प्रमाण भी है[1]।

हनफी फ़कीहों के यहाँ तो ऐसे बहुत से इज्तेहादी नियम हैं जिनमें रीति–रिवाज के बदल जाने और युग परिवर्तन के कारण वर्तमान फ़कीहों ने प्रारम्भिक फ़कीहों से मतभेद किया है और प्रारम्भिक फ़कीहों के विरुद्ध फ़तवा दिया है और इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है, स्वयं इमाम अबू हनीफा के मत का अनुसरण करने वालों ने ही यह कार्य किया है, सरख्शी ने लिखा है : ''इमाम अबू हनीफा ने प्रारम्भ में जब ईरान के लोग नये–नये मुसलमान हुए थे और अरबी भाषा का उच्चारण उनके लिए कठिन था और लोगों में बिद्अत और गुमराही का भी सन्देह नहीं था तो नमाज़ के अन्दर फारसी भाषा में तिलावत (कुरआन का उच्चारण) करने की अनुमति दी थी, फिर भी जब वह अरबी भाषा में अभ्यस्त हो गये और दूसरी तरफ बिद्अत और गुमराही फैलने लगी तो उन्होंने इस नियम को वापस ले लिया।

इसी तरह उन्होंने लिखा है इमाम अबू हनीफा अपने समय में अर्थात सहाबा के बाद तीसरी पीढ़ी में अपरिचित व्यक्ति की गवाही भी स्वीकार कर लेते थे मात्र देखने में न्यायप्रिय दिखाई देना पर्याप्त था, परन्तु इमाम अबू हनीफा के दो महत्वपूर्ण शिष्यों इमाम अबू यूसुफ और इमाम मोहम्मद ने अपने समय में इसका इन्कार कर दिया : क्योंकि लोगों में झूठ फैलने लगा था[2] हनफी मत के लोग इमाम अबू हनीफा और उनके दोनों शिष्यों के मध्य मतभेद के इस चरित्र को युग का भेद बताते हैं, तर्क और दलील का नहीं। हनफी उलमा के विचार में फ़िक़्ह

1. अल फुरूक़ पृ ० 176–77 / 1
2. असूलुत्तशरीअ अल इस्लामी लेखक अली हसीबुल्लाह पृ0 84–85

का एक मौलिक नियम है : ''रीति–रिवाज नियम व फैसला करने का आधार होता है[1]'' और इसकी दलील इब्ने मसूद का यह कथन है : ''जिसको मुसलमान अच्छा समझें वह अल्लाह की दृष्टि में भी अच्छा है[2]।''

अन्तिम युग के महान आलिम और विद्वान इब्ने आबिदीन शामी ने इस विषय पर एक किताब ''*नशरूल उर्फ फीमा बुनिय मिनल एहकाम अलल उर्फ*'' लिखी है, इसमें बताया गया है कि अनेक इज्तेहादी और फ़िक़्ही मसले ऐसे होते हैं जिनका आधार उस समय का रीति–रिवाज होता है, यदि उस समय में दूसरा रीति–रिवाज होता तो फ़तवा भी दूसरा होता, इसलिए इज्तेहाद करने वाले के लिए यह भी शर्त है कि वह लोगों के रीति–रिवाज से परिचित हो।

अल्लामा शामी लिखते हैं : ''बहुत से क़ानून युग के परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो जाते हैं चूँकि उस समय का रीति–रिवाज बदल जाता है, या नयी आवश्यकताएँ उत्पन्न हो जाती हैं, या उस समय के

---

1. इब्ने नजीम अल हनफी (970) अल कवाईदुल कुल्लीयः मिन किताबिल इश्बाह वन्नज़ाइर, अल फन्नुल अव्वल, शोध अब्दुल अजीज वकील हिल्मी संस्थान द्वारा प्रकाशित
2. कुछ लोगों ने इस रिवायत को मरफ़ूअ भी कहा है, लेकिन सही बात यह है कि यह इब्ने मसूद पर रुक गई है, इसको इमाम अहमद ने मुसनद (3600) में मौक़ूफ़ के रूप में रिवायत किया है, इसकी पड़ताल करने वालों ने कहा है इसका प्रमाण हसन है, तयालसी ने मुसनद (33/1) में बज़ार ने मुसनद (212/5) में और तबरानी ने कबीर (112/9) में, हाकिम ने मुस्तरक किताबुल मअरफतुस्सहाबा (83/3) में रिवायत की है, और कहा है कि इसके प्रमाण सही हैं परन्तु शेख़ैन ने इसकी पड़ताल नहीं की। हैशमी ने मजमऊज्जवाइद में लिखा है इसको अहमद बज़ार और तबरानी ने कबीर में रिवायत की है इसके रिवायत करने वाले विश्वसनीय हैं (428/1)

लोगों में बिगाड़ आ जाता है, अब यदि पहले का क़ानून जारी रहेगा तो इसमे लोगों के लिए कठिनाई और परेशानी होगी और वह शरीअत के उन नियमों के विरुद्ध होगा जो आसानी और ढ़ील, हानि और बिगाड़ को रोकने पर आधारित है और ताकि दुनिया में अच्छी और सर्वोत्तम व्यवस्था स्थापित रहे। इसलिए हम देखते हैं कि मसलकों के संस्थापकों द्वारा किए गए इज्तेहाद का अनेक अवसरों पर विरोध किया गया क्योंकि मतभेद करने वाले जानते थे कि यदि मसलक के संस्थापक वर्तमान युग में होते तो यही बात कहते क्योंकि फ़िक़्ह के नियमों के अनुसार यही बात सिद्ध होती है।

फ़िक़्ह की किताबों में——मसलकी मतभेद के बावजूद——ऐसे नियम और फ़तवे हैं जो अपने समय के रीति–रिवाज पर आधारित हैं परन्तु आज वह रीति–रिवाज बदल गये हैं, अतः यह आवश्यक है कि रीति–रिवाज के बदलने से फ़तवा या क़ानून में परिवर्तन किया जाये, विशेष रूप से हमारे इस युग में जिसमें लोगों के जीवन में बहुत से बदलाव आ गये हैं, और ये बदलाव वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का परिणाम हैं जिसने समाज और देशों के जीवन को उलट–पलट कर रख दिया है, विशेष रूप से हमारा वर्तमान युग जबकि प्रौद्योगिकी और आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास ने लोगों के जीवन और देशों के समाजों को पूर्ण रूप से प्रभावित कर दिया है, आज परिवर्तन इस हद तक आ गया है कि यदि क़ब्र से कोई मुर्दा जीवित होकर बाहर आ जाये तो उसको यह विश्वास ही नहीं होगा कि यह वही संसार है जहाँ उसने जीवन व्यतीत किया था।

वर्तमान युग के कुछ नयी औद्योगिक और आर्थिक रीतियों के उदाहरण को देखिये जो बैंक के चैक कैश कराने से सम्बन्धित हैं, यदि

हम अधिकार प्राप्त करने (क़ब्ज़ा) के लिए हाथों–हाथ अधिकार देने को आधार बनायें जो फ़कीहों ने बनाया है तो चैक के माध्यम से लेन–देन को हराम ठहराया जायेगा; जबकि यह आज की आवश्यकता है, इसलिए फ़कीह के लिए आवश्यक है कि वह सम–सामयिक रीतियों को ध्यान में रखे। चैक कैश होने में एक–दो दिन और कभी इससे भी अधिक समय लगता है, उदाहरण के लिए किसी ने वृस्पतिवार को किसी दूसरे बैंक के लिए चैक जारी किया, हमारे यहाँ शुक्रवार की छुट्टी है और उनके यहा शनिवार और रविवार की, तो इसके कारण चैक को कैश कराने में देरी होती है।

आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में बहुत सी रीतियाँ हैं जो आज बदल चुकी हैं और उनके कारण फ़तवा का परिवर्तन अनिवार्य हो गया है, उदाहरण के लिए आज फोन, इन्टरनेट या फैक्स के माध्यम से व्यापार हो सकता है जिनमें पहला पक्ष अमेरिका में दूसरा एशिया में होता है, जैसे इन्टरनेट पर निकाह आदि ऐसे मामले हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति भिज्ञ है, इसके अतिरिक्त अनेक दिन–प्रतिदिन की प्रक्रियाएँ हैं जिनकी माँग है कि मुफ्ती उन मामलों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखे और अपने आप को फ़िक़्ह के उन नियमों में सीमित न रखे जिनका वास्तविक उद्देश्य आज समय और स्थान के परिवर्तन के कारण बदल चुका है।

कुछ रीति–रिवाज ऐसे हैं जिनके आधार पर सरकारों ने नये क़ानून बनाये हैं जिनमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है और सरकार के कुछ क़ानून ऐसे हैं जिनके कारण नये रीति–रिवाज अस्तित्व में आ गये हैं।

मसलकों के आदेशों पर आधारित कुछ रीति–रिवाज ऐसे हैं जो अब आज के जीवन के लिए उपयुक्त नहीं रहे, उदाहरण के लिए कुछ

मसलकों में महिलाओं को मस्जिद में जाने या सम्बोधन सुनने या धार्मिक व्याख्यान में सम्मिलत होने से रोका गया है जबकि आज महिला स्कूल में जाती है, विश्वविद्यालयों में जाती है, बाजार में जाती है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त करती है और नौकरी भी करती है। विदेशों की यात्रा भी करती है, फिर उसे मस्जिद में जाने से क्यों रोका जाये?

इसका एक उदाहरण यह भी है कि फ़कीहों ने लिखा है और इसकी ओर उन्होंने कही संकेत भी किया है कि रास्ते में खाना शिष्टाचार और संकोच के प्रतिकूल है, इसलिए रास्ते में खाने वाले की ग़वाही विश्वसनीय नहीं होगी। आज के तेज रफ्तार जीवन में हम देखते हैं कि बहुत से लोग अपने ऑफिस जाते हुए या ऑफिस से घर वापस होते हुए रास्ते में हल्का नाश्ता आदि लेते हैं, कुछ लोग इस युग को "सैण्डविच का युग" कहते हैं।

यदि हम इस आधार पर उनकी गवाही को अविश्वसनीय मान लें तो इससे बहुत से लोगों के अधिकार नष्ट हो जायेंगे, विशेष रूप से ऐसी परिस्थितियों में जब लोग चलते हुए खाने को शिष्टाचार और संकोच के विरुद्ध नहीं समझतें; बल्कि इसको वर्तमान युग की आवश्यकताओं में गिनते हैं।

इसमें वह मौलिक नियम भी सम्मिलित हैं जो रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग की रीतियों के आधार पर बनाये गये थे। आज वह रीतियाँ बदल गई हैं तो इनमें कोई हानि नहीं कि हम हदीस का मूल उद्देश्य अपने सामने रखे न कि हम मात्र शब्दों से चिमटे रहें।

इसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि कभी–कभी हदीस के आधार पर बनाये गये मौलिक नियम भी रीतियों पर आधारित होते हैं फिर वह बदल जाते हैं जैसे आप (सल्ल0) ने नकदी रक़म की ज़कात में चाँदी

का निसाब (ज़कात की सीमा) दो सौ दिरहम (जिसका वजन लगभग 595 ग्राम होता है) रखा। और सोने का निसाब बीस मिस्क़ाल या दीनार (जिसका वजन लगभग 85 ग्राम होता है) रखा। उस समय एक दीनार बीस दिरहम के बराबर होता था। आप (सल्ल0) ने दोनों रक़मों के लिए अलग–अलग निसाब निर्धारित नहीं किया था बल्कि वास्तव में वह एक ही निसाब था जिसके पास इतना होता वह मालदारों में गिना जाता था, उस पर ज़कात अनिवार्य होती, यह स्तर रसूलुल्लाह (सल्ल0) के युग में प्रचलित दोनों रकमों के अनुसार तय किया गया और इसी रीति और रिवाज के आधार पर क़ानून निर्धारित हुआ और दोनों नक़दियों में से ऐसी मात्रा रखी जो समान थी अर्थात जितनी मालियत 85 ग्राम सोने की थी उतनी ही 585 ग्राम चाँदी की थी लेकिन आज स्थिति पूर्णतः बदल गई है। चाँदी का मूल्य सोने के मूल्य की तुलना में बहुत कम है इसलिए अब हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम इतने बड़े अन्तर वाले दो मानक निर्धारित करे उदाहरण के लिए हम कहें कि ज़कात का निसाब दो है जो 85 ग्राम सोने या 595 ग्राम चाँदी के बराबर है, इस स्थिति में सोने के निसाब का मूल्य चाँदी के निसात से लगभग बीस गुना अधिक होता है, और यह बात विवेकपूर्ण नहीं है कि हम ऐसे आदमी से, जिसके पास बीस लीबियाई दीनार या मिस्री गिन्नी हों तो कहें कि आप चाँदी के निसाब के अनुसार मालदार हैं, जिसके पास इससे कई गुना अधिक मालियत हो तो कहें कि आप सोने के निसाब के अनुसार निर्धन हैं।

हमारे वर्तमान युग में इस समस्या से निकलने का एक ही रास्ता है, वह यह कि हम ज़कात के लिए निसाब के रूप में सोने को निर्धारित कर लें क्योंकि यह दूसरे मानकों के भी निकट है, इसकी तुलना में चाँदी का निसाब है जो हमारे युग के अमीर (दौलतमन्द) होने

से बहुत कम है, इसके स्वामी को किसी भी तरह मालदार नहीं कहा जा सकता। प्रोफेसर अबू ज़हरा मिस्री का भी यही मत है और उनके दो दिवंगत साथी शेख अब्दुल वह्हाब ख़ल्लाफ और शेख अब्दुल रहमान हसन ने भी दमिश्क में ज़कात पर दिये गये अपने व्याख्यान में 1952 ई0 में यही बात कही थी कि ज़कात का निसाब मात्र सोने को निर्धारित किया जाये और मैनें भी अपनी किताब *फ़िक्हुज़्ज़कात* में यही मत अपनाया है।

(5)
जानकारी में परिवर्तन

क. जानकारी में परिवर्तन का अर्थ : जानकारी बदल जाने का अर्थ यह है कि शरीअत की जानकारी परिवर्तित हो जाये या जीवन की वास्तविक जानकारियँ परिवर्तित हो जायें। शरीअत की जानकारी का परिवर्तन यह है कि किसी मुफ़्ती या फ़क़ीह ने अपना फ़तवा किसी एक निर्धारित हदीस की रोशनी में दिया, फिर उसको पता चला कि इस हदीस का प्रमाण कमज़ोर है तो उसका फ़तवा बदल जायेगा। कभी इसके विपरीत भी हो सकता है अर्थात मुक्ती हदीस के प्रमाण को कमज़ोर समझ कर छोड़ दे और फिर पता चले कि वह हदीस सही है तो उसका फ़तवा बदल जायेगा।

कभी ऐसा भी हो सकता है कि मुफ़्ती को कोई हदीस मालूम ही न हो फिर उसको सही हदीस मिल जाये और उसके आधार पर वह अपना विचार और फ़तवे को बदल ले जैसा कि हमारे प्रारम्भिक इमाम किया करते थे। इमाम अबू हनीफा के शिष्यों ने इस आधार पर भी अपने कुछ विचारों को परिवर्तित किया, इमाम अबू हनीफा के शिष्य इमाम अबू यूसुफ, इमाम मोहम्मद और इमाम जफर, इमाम अबू हनीफा के बाद भी जीवित रहे और उन्होंने बहुत से मसलों में अपने फ़तवों को परिवर्तित किया और लगभग एक तिहाई या उससे अधिक मसलों में अपने इमाम के विरुद्ध फ़तवा दिया। इस परिवर्तन का कारण कभी तो युग का परिवर्तन था और कभी जानकारी का परिवर्तन[1]।

---

1. मजमूअः रसाइल इब्ने आबदीन पृ0 125/2

उदाहरण के लिए इमाम अबू यूसुफ की मदीने में जब इमाम मालिक से मुलाक़ात हुई तो साअ के वजन के सम्बन्ध में बात–चीत की कि वह कितने वजन का होता है, पॉच रतल (449.28 ग्राम) और तिहाई का पॉच रतल और तिहाई का या आठ रतल का, साथ ही मदीने के साअ का अवलोकन किया जो मदीने के कारीगर नबी (सल्ल0) के युग से निरन्तर बनाते आ रहे थे, उन सबको देखकर इमाम अबू युसूफ ने अपना विचार बदल दिया। इसी प्रकार वक्फ के मामले में भी उन्होंने अपने विचार बदले और कहा कि यदि हमारे गुरु अर्थात इमाम अबू हनीफा वह देखते जो मैंने देखा तो वह भी अवश्य वही बात कहते जो मैने कही, इस तरह मानों जानकारी बदलने से फ़तवा भी बदल जाता है।

ख. इमाम भााफई का जानकारी बदलने से फ़तवा बदलना : जब इमाम शाफई मिस्र गये और वहाँ फ़िक़्ह के नये स्कूल की आधारशिला रखी तो उसमें उनके कुछ नये फ़तवे ऐसे भी थे जो उनके पुराने फ़तवे के विरुद्ध थे। कुछ लोग इस परिवर्तन का कारण स्थान के परिवर्तन को समझते हैं परन्तु मात्र स्थान का परिवर्तन ही इसका एक मात्र कारण नहीं है यह तो गौढ़ कारणों में से है, इसका वास्तविक कारण यह था कि मिस्र में उनको ऐसी रिवायतें मिली जो उन्होंने इससे पहले नहीं सुनी थीं और ऐसी चीज़ें देखी जो इससे पहले नहीं देखी थी। उन्होंने मिस्र के उलमा से भी ज्ञान प्राप्त किया, और आयु बढ़ने के साथ–साथ उनकी वैचारिक योग्यता भी परिपक्व हुई, इस तरह इन कारणों ने उनको अपने पुराने फतवों पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया, इसलिए उन्होंने अपना मत परिवर्तित किया और एक नये मसलक की स्थापना की, अतः

अब हम यह कहते हैं कि इमाम शाफई का पुराना कथन यह है और नया कथन यह है।

ग. हमारे युग में जानकारी का परिवर्तन : मैं यहाँ यह बताना चाहता हूँ कि आज के युग में फ़कीह या मुफ्ती के लिए जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं वे इससे पहले नहीं थीं। जानकारी की अधिकता के अनुसार भी और उन जानकारियों तक शीघ्र पहुँच के अनुसार भी, और यह सब कुछ आज की इस आश्चर्यजनक मशीन अर्थात कम्प्यूटर के माध्यम से है। आज कोई भी आलिम या शोधकर्त्ता इस मशीन के बटन को दबाने से हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करके वह अपने पुराने विचार को बदल कर के नया मत अपना सकता है, विशेष रूप से इंटरनेट की सुविधा आ जाने से जिसने पारंपरिक मानकों को बदल दिया, शोधकर्त्ता इसके प्रयोग के माध्यम से मजबूत और कमज़ोर प्रमाणों के अनुसार किसी हदीस का स्थान और उसके सम्बन्ध में उलमा के कथनों को शीघ्र ही जान सकता है।

आज बहुत सी किताबें भी संपादित हो गई हैं। उलमा ने इनको संपादित करने में कठोर परिश्रम किया और मजबूत और कमज़ोर हदीसों को अलग कर दिया। नई जानकारी की रोशनी में कुछ सही हदीसों को कमज़ोर ठहराया और कुछ कमज़ोर हदीसों को सही, इन सब कारणों ने भी मुफ्तियों की धार्मिक जानकारी के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

घ. कुछ व्यक्तिगत अनुभव : यहाँ मैं कुछ अपना उदाहरण दूँगा : मैं यह फ़तवा दिया करता था कि औरत मुसलमान हो जाये और पति अपने

धर्म पर क़ायम रहे तो उसका अपने पति से अलग होना अनिवार्य है। यही मुझे मालूम था। फिर मुझे इमाम इब्ने कय्यिम की किताब *अहकाम अहलुल ज़िम्मा* पढ़ने का अवसर मिला इमसें इस समस्या के सम्बन्ध में नौ कथन थे, उनमें से एक कथन हज़रत उमर का था कि उन्होंने महिला को दोनों का विकल्प दिया था, चाहे अपने पति के साथ रहे या अलग हो जाये। हज़रत अली का कथन था जब तक दोनों उसी शहर में निवास करें तो पति उससे लाभ प्राप्त करने का अधिक हक़दार है। इमाम ज़ुहरी का कथन था कि वह दोनो अपने पुराने निकाह के अनुसार रहेंगे जब शासक उन दोनों के बीच अलगाव आदि न करा दे।

यूरोपीय फ़तवा कॉउन्सिल में हमारे भाई अब्दुल्लाह अल–जद्दीअ ने इस सम्बन्ध में सहाबा के कथनों को तलाश किया तो तेरह कथन मिले। अब उनमें से उन कथनों का चुनाव करता हूँ जो मेरी दृष्टि में शरीअत के उद्देश्य और सामाजिक हितों से ज्यादा निकट हैं और कहता हूँ कि अब मैं भी ऐसी परिस्थति से गुज़रने वाली महिला को अमीरुल मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि0), हज़रत अली (रज़ि0) और इमाम ज़ुहरी आदि के मतानुसार यह फ़तवा दे सकता हूँ कि ऐसी औरत अपने पति के साथ रहे, विशेष रुप से जब तक उनके बीच अलगाव का कोई निर्णय न हो जाये, चूँकि यहाँ मेरी जानकारी में परिवर्तन हुआ अतः मेरा फ़तवा भी बदल गया[1]।

इसी प्रकार मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम के बीच विरासत के बटँवारे की समस्या में वही फ़तवा दिया करता था जो चारो इमामों के

---

1. इसका विवरण हमारी पुस्तक फतावा मआसिर पृ० 605/3 और उससे आगे, और हमारी पुस्तक फ़िक्हुल अकल्लियात अल मुस्लिम पृ० 105 और उससे आगे। रसाइल इब्ने आबदिन पृ० 125/2

यहाँ प्रचलित है कि दो धर्मों के लोग आपस में वारिस नहीं होते, न कोई क़ाफिर मुसलमान का वारिस होगा और न कोई मुसलमान काफ़िर का वारिस होगा। एक ज़माने के बाद मेरे सामने स्पष्ट हुआ कि इस समस्या में मुफ्ती के लिए क्या गुंजाइश है। इस समस्या में कुछ सहाबा जैसे मुआज़ बिन जबल (रज़ि0), अमीर मुआविया (रज़ि0) और कुछ उनके बाद के लोग जैसे मुहम्मद बिन हनफियः, मुहम्मद बिन अली बिन हुसैन अबू जाफर अल बाकर, सईद बिन मुसैब, मस्रूक़ बिन अज़दअ, अब्दुल्लाह बिन मुग़फ्फल, यहया बिन यअमर और दूसरे लोगों में इस्हाक बिन राहविया ने इसकी अनुमति दी है कि मुसलमान काफिर का वारिस हो सकता है। इब्ने तैमिया ने इसी को वरीयता देने योग्य कथन बताया है और इसके समर्थन में विस्तृत वार्ता की है, और उनके शिष्य इब्ने कय्यिम ने भी यही लिखा है और वास्तविकता यह है कि इसी में भलाई और हित है[1]।

च. तथ्यपरक जानकारी का परिवर्तन : कभी ऐसा भी होता है कि ग़ैर शरई जानकारी बल्कि जानकारी के तथ्य बदल जाते हैं, जैसे जब तम्बाकू और सिगरेट आदि प्रचलित हुए तो इसके क़ानून में उलमा में मतभेद हुआ, कुछ ने कहा कि यह मकरुह (घृणित) है, कुछ ने इसको हराम ठहराया और कुछ ने इसकी अनुमति दे दी और कुछ लोगों ने कहा इस्लाम के पॉचों आदेश (अर्थात वैध, मकरूह, हराम और हलाल आदि) इस पर लागू होंगे। लेकिन हमारे वर्तमान युग की नई जानकारियों की रोशनी में यह बात सिद्ध हो गई है और इस पर डाक्टरों का एक मत है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, इससे फेफड़े

1. विस्तृत विवरण के लिए देखे हमारी पुस्तक फतावा मआसिरः खण्ड 3, पृ० 674–679

का कैन्सर हो सकता है और भी दूसरी बीमारियाँ हो सकती हैं। यह बात अब प्रत्येक व्यक्ति को मालूम है, चूँकि अब जानकारी बदल गई अतः फ़तवा भी बदल जायेगा, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मुफ्ती के लिए आवश्यक है कि वह डाक्टर की रिपोर्ट के आधार पर फ़तवा दे, यदि डाक्टर कहे कि यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तो मुफ्ती कि लिए अनिवार्य है कि वह इसके हराम होने का फ़तवा दे[1]

अल्लाह तआला का फ़रमान है : ''और अपने आप की हत्या मत करो यकीन मानो कि अल्लाह तुम्हारे ऊपर दयावान है''

(सूरः निसा 29)

सिगरेट पीना अपने आप की हत्या करना है परन्तु यह धीरे–धीरे मृत्यु की तरफ ले जाती है, या यह धीरे–धीरे आत्महत्या करना है। अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने फ़रमाया है : ''न तुम किसी को हानि पहुँचाओं न तुझे हानि पहुँचाया जाये[2]।'' तो फिर इसकी अनुमति कैसे दी सकती है कि मनुष्य अपने इच्छा से अपने आप को हानि पहुँचाये बल्कि पैसा देकर अपने लिए हानि खरीदे।

छ. गर्भकाल : गर्भ की समस्या भी जानकारी के परिवर्तन से जुड़ी हुई है, कुछ उलमा कहते हैं कि कभी–कभी गर्भ दो साल तक औरत के पेट में रह सकता है जैसा कि हनफी उलमा का विचार है और कुछ लोगों का कहना है कि पॉच साल तक रह सकता है जैसा कि इमाम मालिक

---

1. विवरण के लिए देखे हमारी पुस्तक फतावा मआसिरः (654/1) और इसके बाद के पृष्ठ
2. अहमद ने इस रिवायत की (2865) इब्ने अब्बास से की है, इसकी पड़ताल करने वालों ने कहा है कि इसका प्रमाण हसन है। इब्ने माजा ने अहकाम (2341) में और तबरानी ने औसत 128/4 और कबीर (228/11) में हसको रिवायत किया है।

का मत है[1]।

वास्तव में इस समस्या में पिछले युग में लोगों की जानकारी अपूर्ण और ग़लत थी।

---

1. अधिकतर गर्भकाल के सम्बन्ध में फ़क़ीहों के विभिन्न कथन हैं, उनको हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं

(क) अधिकतर गर्भकाल नौ महीने है और यही निर्धारित है। इमाम दाऊद अल मेहली और इब्ने हज़्म दोनो का यही मत है (इब्ने हज़्म की अल मेहली 132/10, तफ्सीर क़ुर्तबी 287/9)।

(ख) हो सकता है कि गर्भकाल नौ महीने से बढ़ जाये इसके समर्थको ने अधिकतर गर्भकाल में निम्नलिखित मतभेद किए हैं।

–गर्भ का अधिकतम समय एक वर्ष हो सकता है। यह कथन मुहम्मद बिन अब्दुल हक़ीम का है। इब्ने रुश्द ने भी इसको अपनाया है (तफ्सीर कर्तबी 287/9)

–अधिकतम गर्भकाल दो वर्ष हो सकता है। यह हनफ़ी उलमा का मत है (हाशिया इब्ने आबदीन 511/5, व्याख्या फतहुल क़दीर, इब्ने हुमाम 362/4)

–अधिकतम गर्भकाल 3 वर्ष हो सकता है यह लैस बिन सअद का कथन है (इब्ने कुदामा की पुस्तक अल मुग्नी 477/7, व्यख्या फदहुल कदीर इब्ने हुमाम 362/4)

–गर्भ का अधिकतम समय 4 वर्ष हो सकता है यह शाफई और हम्बली उलमा का मत है (अल उम्म लिश्शाफई 212/5, नववी की रौज़तुत्तालिबीन 39/6)

–गर्भ का अधिकतम समय 5 वर्ष हो सकता है। यह इमाम माली की एक रिवायत है (इब्ने अब्दुल बर की अल काफी 293)

–गर्भ का अधिकतम समय 6 वर्ष हो सकता है। यह इमाम मालिक और जुहरी का कथन है (तफ्सीर कर्तबी 287/9)

–गर्भ का अधिकतम समय 7 वर्ष हो सकता है। यह रबीअः का कथन है और जुहरी और मालिक से भी रिवायत है (तफ्सीर कर्तबी 287/9)

अधिकतम गर्भकाल का कोई निर्धारण नहीं किया जा सकता। जब गर्भ के लक्षण पाये जाये जैसे पेट में गति हो तो प्रसव प्रतीक्षा की करनी चाहिए कितना ही समय व्यतीत हो जाये, हाँ 9 महीने तक गर्भ के लक्षण प्रतीत न हो तो फिर प्रतीक्षा नहीं की जायेगी इसलिए कि 9 महीने बहुप्रतीक्षित गर्भकाल है। अबू उबैद और शौकानी का मत यही है (अस्सीलुल जर्रार लिश्शौकानी 334/2)

क़त्नी और बैहकी ने अपनी *सुनन कुब्रा* में वलीद बिन मुस्लिम से रिवायत किया है वह फ़रमाते हैं : मैने मालिक बिन अनस से पूछा कि मुझसे यह हदीस बयान की गई है कि उन्होंने फ़रमाया : "महिला का गर्भ दो वर्ष से तकली की छाया से भी अधिक नहीं हो सकता" तो उन्होंने कहा : सुब्हान अल्लाह, ऐसा कौन कहता है? यह हमारी पड़ोसन मुहम्मद बिन अज्लान की पत्नी है जो एक सच्ची औरत है और उसका पति भी सच्चा आदमी है। बारह वर्ष में तीन बार गर्भवती हुई प्रत्येक गर्भ चार वर्ष तक रहा[1]।

इमाम मालिक की इस वार्ता का आधार किस चीज़ पर है? निश्चय ही महिला और उसके पति के कथन पर है, हालाँकि अल्लाह तआला ने फ़रमाया : "और उसके गर्भ और दूध छुडाने में तीस महीने लगे।" यह कैसे होगा कि गर्भ और दूध छुड़ाने की अवधि तीस महीने हो, तत्पश्चात औरत चार या पॉच वर्ष तक गर्भवती रहे क्या यह क़ुरआन के विरुद्ध नहीं है?

वर्तमान समय में आधुनिक चिकित्सा पद्धति की जानकारियों ने इन चीज़ों की वास्तविकता स्पष्ट कर दी है[2]।

जो दीर्घकाल का गर्भ होता है, उसको झूठा गर्भ कहा जाता है। झूठा गर्भ क्या है? वह यह है कि कभी–कभी महिला को माँ बनने का बहुत शौक होता है इसलिए कभी–कभी उसको गर्भ का आभास होने

1. दारकुत्नी ने सुनन (322/3) और बैहकी ने कुब्र 443/7 में इसको रिवायत किया है।
2. डा0 मामून शक्फा ने लिखा है कि प्रसव 39 से 41 सत्तार में हो तो वह भ्रूण की सुरक्षा के लिए अधिक अच्छा है। यदि 41 सप्ताह से अधिक हो जाये तो शिशु के जीवन के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है और 42 सप्ताह से भी अधिक हो जाये तो खतरा भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है। (अल क़रारूल मकीन, मामून शकफ़ पृ0 74)

लगता है। पेट भी फूलने लगता है और उसको ऐसा प्रतीत होता है कि पेट में कोई चीज़ गति कर रही है, उसको जी मिचलाता है और गर्भ के सभी लक्षण महसूस होते हैं जबकि वह गर्भ नहीं होता। इस झूठे गर्भ की जाँच वर्तमान युग के विश्लेषणात्मक यन्त्रों से की जा सकती है परन्तु प्राचीन काल में ऐसा नहीं था, ऐसा होता था कि महिला एक वर्ष, दो वर्ष बल्कि तीन वर्ष तक गर्भ महसूस करती रहे और उसी अवधि में हो सकता है कि अल्लाह का आदेश हो जाये और वह वास्तव में गर्भवती हो जाये तो इस पूरी अवधि को गर्भकाल समझती है, और हो सकता है कि कोई व्यक्ति उसको इस पूरी अवधि में देखे कि उसको उल्टी हो रही है या उसका जी मिचला रहा है और अन्त में उसके प्रसव होता है।

इन जानकारियों की रोशनी में हम कह सकते हैं कि आज फ़कीहों की जानकारी इस सम्बन्ध में वरीयता देने योग्य नहीं है बल्कि स्वीकार्य भी नहीं है, इसलिए कि यह जानकारी वैज्ञानिक तथ्यों के विरुद्ध है, इससे बढ़कर यह क़ुरआन के भी विरुद्ध है, इसलिए हम कहेंगे कि वर्तमान युग में फ़तवा के परिवर्तन के सबसे महत्वपूर्ण कारणों में से एक कारण जानकारी का परिवर्तन है। इसलिए मिस्र के परिवारिक क़ानून में (पर्सनल लॉ में) इब्ने अब्दुल हकम के निर्णय के अनुसार यह फैसला दिया गया कि अधिकतर गर्भकाल एक वर्ष है यद्यपि इब्ने अब्दुल हकम की दृष्टि में वर्ष से तात्पर्य चन्द्र वर्ष (Luner Year) है जबकि मिस्र के क़ानून में सौर वर्ष (Solar Year) ही समझा जाता है।

ज. पहली का चाँद देखना : वास्तव में जानकारी के परिवर्तन में से यह भी है जिसे खगोल शास्त्र ने हमे बताया और इस पर विशेषज्ञों का

मतैक्य है और वह चन्द्र वर्ष के आरम्भ से सम्बन्धित है। जिसको खगोल विशेषज्ञ अपनी शब्दावली में इक़्तेरान, इज्तेमाअ (Conjunction, New Moon) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि सूरज चाँद और पृथ्वी समरेखीय हो जायें और ऐसा पूरी दुनिया पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में एक ही पल में होता हैं कभी रात में होता है और कभी दिन में, वैज्ञानिक दृष्टि से इस इक्तेरान (Conjunction, New Moon) से पूर्व पहली का चॉद संसार के किसी भी भाग में नहीं दिखाई दे सकता।

इस सिद्धान्त पर समस्त खगोल विशेषज्ञ एक मत हैं, मुसलमानों का भी और ग़ैर मुसलमानों का भी। खगोलशास्त्र गणित का एक भाग है जो निरीक्षण और गणितीय आँकलन पर आधारित है। मुसलमानों ने भी अपने उत्थान काल में इस कला को बहुत विकसित किया और आज तो इस कला ने और भी अधिक विकास कर लिया है। इसके आधार पर इन्सान चॉद तक जा पहुँचा, इससे भी दूरस्थ तारों पर उतरने का प्रयास जारी है।

यदि कोई खगोल विशेषज्ञ यह बता दे कि इक्तेरान अभी नहीं हुआ तो उस शहर के लोगों को चाँद देखने का आवाहन करना निरर्थक है और शरीअत विभाग या फ़तवा कार्यालय ऐसे कार्य के लिए स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वह मात्र गवाहों की गवाही लेता रहे; इसलिए कि ऐसी स्थिति में जो भी चाँद देखने की गवाही लेगा उसको या तो सन्देह हुआ होगा या गलती कर रहा होगा या फिर झूठ बोल रहा होगा, ऐसी स्थिति में लोगों को चाँद देखने का आवाहन करने का कोई कारण नहीं क्योंकि इस तरह हम उनको अन्धविश्वास का अनुसरण करने और झूठ बात कहने का आवाहन कर रहे होंगे।

परन्तु यह बात प्राचीन काल में फ़तवा देने वालों (न्यायधीशों) को मालूम नहीं थी और यदि लोग जानते भी थे तो ऐसे लोग बहुत कम थे जो खगोल अथवा गणित के विशेषज्ञ थे[1]।

इसलिए वह 29 तारीख को सूरज डूबने के बाद सभी मुसलमानों को चाँद देखने का आवाहन करने के लिए विवश थे। इक्तेरान (New Moon) की जानकारी प्राप्त हो जाने के बाद शरीअत के विद्वानों का इस पुरानी रीति पर जारी रहना और लोगों को चाँद देखने का आवाहन करना किसी तरह विवेकपूर्ण नहीं है। क्योंकि इक्तेरान का मामला पूरी दुनिया में स्वीकृत तथ्यों में से है। मुस्लिम देश भी इसको स्वीकार करते हैं; प्रत्येक मुस्लिम देश में कुछ न कुछ खगोल विशेषज्ञ मौजूद हैं।

आधुनिक युग में अनेक नवीन जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं, ऐसी चीज़ें जिनका आधार तथ्यों पर है उनकी रोशनी में चीज़ों के अन्दर शरीअत का मत बदल जाता है, अब आवश्यक है कि प्राचीन जानकारी को सुधार कर फ़तवा भी परिवर्तित किया जाये।

---

1. जैसे इमाम तकीउद्दीन सुबकी शाफई जो फ़िक़्ह के सिद्धान्त के विशेषज्ञ हैं, उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह पूर्ण इस्तेहाद करने की योग्यता रखते थे। उन्होंने अपने रिसालः अल हिलाल में लिखा है यदि अन्तरिक्षीय गणित से चाँद को देखना असंभव हो और एक दो या तीन लोग गवाही दें कि उन्होंने चाँद देखा है तो क़ाज़ी के लिए आवश्यक है कि वह उनकी गवाही निरस्त कर दे क्योंकि गणित अन्तिम निष्कर्ष देती है और गवाही काल्पनिक निष्कर्ष देती है अतः गवाही गणित का मुक़ाबला नहीं कर सकती अतः इसको प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।

(6)
आव□यकताओं का परिवर्तन

फ़तवा के परिवर्तन में एक कारण लोगों की आवश्यकताओं का बदल जाना भी है।

आज के युग में लोगों की आवश्यकताएँ बदल रही हैं। प्राचीन काल में लोग जिन वस्तुओं को भोग–विलास की वस्तु समझते थे आज वह आवश्यकताएँ बन गई हैं, उदाहरण के लिए आज खाड़ी के देशों के गर्म वातावरण में रहते हुए नहीं कहा जा सकता कि रेफ्रिजेरेटर, विलासतापूर्ण वस्तु है; क्योंकि यह आवश्यकता बन चुकी है, इसी तरह पंखा व एयर कंडीशनर आदि भी आज की आवश्यकता बन चुके हैं। इसके बिना आज लोगों का गुजर–बसर नहीं हो सकता, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ का तापमान 50^0 सेल्सियस तक पहुँचता हैं। यदि मैं ज़कात के निसाब (अदा करने की सीमा) के सम्बन्ध में बात करुँ कि निसाब वह है जो मनुष्य की मौलिक आवश्यकता से अधिक हो तो मैं यह नहीं कहता कि मौलिक आवश्यकताओं में मात्र खाना–पीना और कपड़ा और मकान हैं; बल्कि आज लोगों की आधुनिक आवश्यकताएँ ऐसी हैं कि उनकी रोशनी में नये सिरे से नियमों को संकलित होना चाहिए।

इमाम इब्ने अबी ज़ैद अल–क़ैरवानी जो मालिकी मत की प्रसिद्ध पुस्तक *अल–रिसालः* के लेखक हैं, बहुत से लोगों ने इस किताब की व्याख्या लिखी है; उनके पास कुछ समकालीन फ़क़ीह गये तो देखा कि

उनके घर में रखवाली के लिए कुत्ता मौजूद है। लोगों ने कहा कि इमाम मालिक कुत्ते पालने को नापसन्द करते थे, उन्होंने उत्तर दियाः यदि इमाम मालिक हमारे युग में होते तो एक शक्तिशाली शेर पालते[1]।

आज लोगों की आवश्यकताएँ बदल चुकी हैं। इमाम इब्ने अबी ज़ैद क़ैरवानी के युग में लोगों की वह आवश्यकताएँ नहीं रही जो इमाम मालिक के युग में थीं यहाँ तक कि लोगों को चोरों और डाकुओं के कारण देखभाल के लिए कुत्ते पालने की आवश्यकता पड़ी, मानों आवश्यकताएँ बदल गई और जब आवश्यकताएँ बदल जाती हैं तो क़ानून भी बदल जाता है।

हमारे युग में पश्चिमी लोग, यूरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में बुढ़ापे में अकेलापन दूर करने के लिए कुत्ते पालते हैं, उनके यहाँ बुढ़ापा साधारणतः लम्बा होता है उनकी आयु साधारणतः 80 वर्ष से अधिक होती है और अधिकतर अकेले रहते हैं, न कोई साथी होता है और न कोई सहानुभूति व्यक्त करने वाला, कुत्ते उनकी आवश्यकता बन गये हैं क्योंकि उनके बेटो और पोते–पोतियों ने उनको छोड़ दिया।

मैं इसका दूसरा उदाहरण देता हूँ, स्कूल और विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राचीन काल में मनुष्य की मौलिक आवश्यकता नहीं थी परन्तु आज वह लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण उद्देश्य और परिवार की मौलिक आवश्यकता बन गई है, साथ ही यह सरकार के भी मौलिक कर्त्तव्यों में सम्मिलित है; इसलिए आवश्यक है कि इसको भी साधारण व्यय में गिना जाये, जिस तरह खाना–पीना और आवास उपलब्ध करना आवश्यक है उसी तरह मनुष्य को उसके लिए, उसके बच्चों के लिए सामाजिक स्तर

---

1. इस कहानी का विवरण देखिये मिनहुल जलील व्याख्या मुक्तसर अल खलील, अध्याय बैअ 306/9 इसके अतिरिक्त देखिये अल रिसालः पर अल्लामा जरूक की व्याख्या 424/2

के अनुसार उपयुक्त शिक्षा उपलब्ध करना भी आवश्यक है। ज़कात का निसाब तय करते हुए शिक्षा की इस आवश्यकता को (कम से कम प्रारम्भिक स्तर पर) मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं में गिनते हुए ज़कात का प्रयोजन समझना चाहिए और मौलिक प्रयोजन के निर्धारण में भी इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए जो इस्लामी समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह मुसलमान हो या ग़ैर मुस्लिम उसके लिए आवश्यक है, और इसके माध्यम से इस्लामी जीवन की छाया में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

मुझसे एक बार यह पूछा गया कि क्या किसी मुसलमान औरत के लिए निकाह करते समय अपने होने वाले पति से यह शर्त लगाना वैध है कि वह अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा को पूरा करेगी? और क्या पति के लिए इस शर्त का पूरा करना अनिवार्य होगा? मेरा उत्तर था : हाँ, ऐसा करना उसके लिए वैध है और यह उसका अधिकार है, विशेष रूप से जब कि वह संभ्रान्त और योग्य हो, उसका अधिकार है कि वह निकाह में ऐसी शर्त लगाये, और पति का कर्त्तव्य है कि वह उस शर्त को पूरा करे, जैसा कि हदीस में हैं : ''मुसलमान ही शर्त्तों के पाबन्द हैं[1]'' और यह भी वचन के पालन की एक किस्म हैं जो इस्लामी कर्त्तव्य है

1. यह हदीस कुछ दूसरे शब्दों में भी आयी है इसकी कुछ रिवायतों में वृद्धि भी है। कई सहाबा ने इसकी रिवायत की है जैसे अबू हुरैरा (रज़ि0), आयशा (रज़ि0) अनस बिन मालिक और राफेअ (रज़ि0) एक रिवायत यह है ''अल मुस्लिमून इन्द शुरूतिहिम'' (मुस्लमान अपनी शर्तो के पास रहते हैं) यह इमाम बुखारी ने इजारा में रिवायत किया है। हाकिम ने इसको मुस्तदरक, किताबुल बुयूअ में नक़ल किया है (47/2), दारकुत्नी ने सुनन में किताबुल बुयूअ (27/3) में हज़रत आयशा से रिवायत की है। तबरानी ने कबीर में (275/4) में राफेअ बिन खुदैज़ से नक़ल की है। अलबानी ने इसको सहीहा हदीसों में गिना है (2915)। दूसरे शब्दों ''वल मुस्लिमून अला शूरुतिहिम'' इनको इमाम तिर्मिजी ने एहकाम 1352 में कसीर बिन

शेष अगले पृष्ठ पर

और जिन शर्तों का पूरा किया जाना अधिक आवश्यक है, वह निकाह की शर्तें हैं, इसके पीछे इस्लाम का उद्देश्य यह है कि एक सभ्य और ठोस परिवारिक इकाई का निर्माण किया जाये।

इसी प्रकार नौकरी करने वाली पत्नी का अधिकार है कि वह अपने पति से निकाह के समय यह प्रण ले सकती है कि वह नौकरी करती रहेगी, यदि पति यह शर्त्त स्वीकार कर ले तो उसको इस शर्त्त का पालन करना होगा और यदि निकाह के समय कोई शर्त्त नहीं लगाई और औरत निकाह से पहले नौकरी करती रही है तो चूंकि यह चलन में है कि औरतें निकाह के बाद भी नौकरी करती रहें, इसलिए पति दबाब डालकर उसकी नौकरी नहीं छुड़वा सकता।

इसी तरह प्राचीन काल में रहने के घर भी वैसे नहीं होते थे जैसे आज हैं, प्राचीन काल में किसी घर के लिए इतना पर्याप्त होता था कि उसमें कुछ कमरे हों जो परिवार के अनेक सदस्यों के लिए पर्याप्त हों, और यह कि उसमें हवा और धूप की व्यवस्था हो और यह कि उसमें चलन के अनुसार सीमित फर्नीचर आदि हो।

परन्तु आज ऐसे घर के लिए जिसमें पति अपनी पत्नी को,

पिछले पृष्ठ का शेष.....................

अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन औफ से रिवायत की है। यह हदीस हसन सहीह हैं अबू दाऊद ने (अल अक्जीयः 3594) में अबू हुरैरा से हाकिम ने मुस्तरक, किताबुल बुयूअ (57/2) में रिवायत की है और कहा है कि इसके सभी रिवायत करने वाले मदीना के रहने वाले हैं लेकिन शेखैन ने इसकी पड़ताल नहीं की है। इसके गवाह हज़रत आयशा, अनस बिन मालिक से रिवायत हैं, जहबी ने कहा है कि कुछ अधि ाकतर ने इसको सही नहीं ठहराया है और नसई ने इसे कमजोर कहा है और दूसरो ने इसको कवी कहा है। तबरानी कबीर (22/17), दारकुत्नी सुनन बुयूअ (27/3) में हज़रत अबू हुरैरा और अनस से रिवायत की है। अलबानी ने सहीह अलजामेअ में इसको सहीह लिखा है (6714)।

अथवा सरकार अपने कर्मचारियों को, या कम्पनी अपने नौकरों को रखती है, आवश्यक है कि इसमें पानी और बिजली का कनेक्शन हो और यह कि इसमें लोगों के लिए जैसे पीने, धोने, सफाई करने, खाना पकाने, आग बुझाने और घर को ठण्डा रखने आदि की सम्पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध हों, इसके बिना मकान को लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला और उसकी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं समझा जाता।

इस प्रकार कुछ देशों में कार अनिवार्य वाहन बन गई है ताकि यदि किसी का कार्यालय दूर हो तो आसानी से घर आ सके जैसे आज–कल बड़े शहरों में ऐसी ही स्थिति हो गई है जहाँ सामान्य परिवहन के माध्यमों की उपयुक्त सुविधा नहीं जो उसको आसानी से घर तक पहुँचा सके।

कुछ ऐसे पेशे जिनमें कुछ शर्त्तों का जोड़ना अनिवार्य हो गया है जबकि पिछले युगों में इनकी आवश्यकता नहीं थी, जैसे शिक्षकों का शैक्षिक प्रशिक्षण ताकि वह अपने छात्रों को अच्छे और रोचक ढंग से पढ़ा सके, इसके लिए अब नियमित रूप से प्रशिक्षण संस्थान स्थापित हैं, जो विशेषज्ञ शिक्षक तैयार करते हैं, इन शिक्षकों का ऐसा विशेष प्रशिक्षण होता है कि वह छात्रों को अधिक अच्छे ढंग से पढ़ा सकें।

लोगों की आवश्यकताओं के परिवर्तन में से वह भी है जो हमने यूरोप और अमेरिका आदि में रहने वाले मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए महसूस किया, और वह यह कि वहाँ ऐसे घरों की विशेष रूप से आवश्यकता महसूस होती है जिनके मालिक मुसलमान स्वयं हों। वह किराये के घरों में रहते हैं और किराये के घरों में वह सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती जो आज के इन्सानों की मौलिक आवश्यकताएँ हैं, विशेष रूप से पश्चिमी देशों में; इसलिए एक मुसलमान को ऐसे घर की

आवश्यकता है जिसमें वह शान्तिपूर्वक रहे और कोई मालिक उसमें कोई आदेश न चलाये, और उसमें उसको यह खतरा न हो कि बच्चे अधिक हो जायेंगे तो उस मकान का मालिक उनको निकाल देगा, और ऐसे घर की आवश्यकता है जिससे समाज में उसका सम्मान बढ़ जाये, जहाँ सामान्यत व्यक्तिगत मकान में रहने वालों का सामाजिक स्तर किराये के मकान में रहने वालों की तुलना में ऊँचा समझा जाता हो, सेवाओं में भी और लोगों की दृष्टि में और उनके सामाजिक रहन–सहन में भी।

उन लोगों को उन सुविधाओं की भी आवश्यकता है जिनसे मकान मालिक लाभान्वित होते हैं जो उनको नागरिक होने के कारण बैंक की ओर से मिलते हैं, जैसे उनके टैक्स में भी किसी सीमा तक छूट हो जाती है और उनको दूसरी सहायता भी मिलती हैं।

यूरोप के रहने वाले मुसलमानों की इन आवश्यकताओं के कारण यूरोपीय फ़तवा कॉउन्सिल ने अधिकतर यूरोप के मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए यह फ़तवा दिया कि यूरोप में मुसलमान बैंक से व्याज पर कर्ज लेकर मकान खरीद सकते हैं और मकान खरीदने के बाद जितना वह मकान का किराया देते थे उसी अनुपात में मासिक किस्त निर्धारित करके बैंक को कर्ज अदा कर दें।

कॉउन्सिल ने यह फ़तवा इस आधार पर दिया कि उसने मकान की आवश्यकता को मुसलमानों के लिए हाजते क़बीयः (प्रबल आवश्यकता) समझा जिसे फ़कीह आवश्यकता कहते हैं जैसा कि उनका यह निर्धारित नियम है :

''हाज़त को आवश्यकता मान लिया जायेगा चाहे वह विशेष हो या सामान्य[1]।''

---

1. हमारी किताब फ़िक्हुल अकल्लीयात अल मुस्लिमः 154–188 दारुल शुरूक अल काहिरा

ऐसा ही एक मसला यह है कि यदि मासिक धर्म वाली महिला को अपने समूह से बिछुडने का डर हो तो वह इस स्थिति में भी तवाफ़ (काबे की परिक्रमा) कर सकती है। ऐसी परिस्थिति में भी हाजत के परिवर्तन की रिवायत होनी चाहिए, जैसे आज एक औरत का नाम हज़ में जाने के लिए किसी समूह में सम्मिलित कर दिया गया तो अब वह अपनी पूरी यात्रा में उसी समूह के साथ रहेगी, चाहे यह यात्रा समुद्री हो, हवाई हो या सड़क यातायात हो। परिस्थति अब पहले जैसी नहीं रही क्योंकि अब प्रत्येक हाज़ी अपने निर्धारित समय का पाबन्द है चूंकि सफर के लिए समय–सारणी पूर्व निधार्रित होती हैं। कोई व्यक्ति इस समय–सारणी से न आगे हो सकता है और न पीछे विशेष रूप से हज़ के समय में, कल्पना कीजिए कि एक महिला को मासिक धर्म प्रारम्भ हो गया और उसने अभी *तवाफे इफाज़ा* (हज़ से लौटते समय काबे की परिक्रमा) नहीं किया है। उसने ईद के तीनों दिनों में प्रतीक्षा किया परन्तु मासिक धर्म बन्द नहीं हुआ तो उसके लिए उसी मासिक धर्म की स्थिति में सावधानीपूर्वक परिक्रमा करना वैध है, इसमें कोई हानि नहीं है यहाँ तक कि इमाम इब्ने तैमिया और उनके शिष्य इब्ने क़य्यिम ने कहा है कि इस स्थिति में उस पर दम (कुर्बानी) आदि कोई भी चीज़ अनिवार्य नहीं होगी। वर्तमान परिस्थिति में हमको इस छूट पर अमल करना चाहिए और औरत और उसके सहयात्रियों के साथ कठोरता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। इसी तरह हमारे युग में अनेक आवश्यकताएँ विद्यमान हैं और निरन्तर नई–नई अस्तित्व में आती रहती हैं, मुफ्ती के लिए अनिवार्य है कि वह अपने फ़तवा में इन दिन–प्रतिदिन बदलती आवश्यकताओं की रियायत करे।

(7) लोगों की योग्यताओं और संसाधनों का परिवर्तन

लोगों की योग्यताओं और उनके अवसरों का परिवर्तन भी उन कारणों में से एक है जिससे फ़तवा परिवर्तित हो जाता है। आज के इन्सान में प्राचीन काल के इन्सान की तुलना में अधिक योग्यताएँ हैं, इसलिए कि आधुनिक विज्ञान ने सात वैज्ञानिक क्रान्तियों के माध्यम से इन्सान को असाधारण योग्यताएँ प्रदान की हैं। ये सात क्रान्तियाँ ये हैं: तकनीक, जीव–विज्ञान, हवाई, नाभिकीय, इलैक्ट्रोनिक, सूचना और संचार की क्रान्ति। इन सब ने मनुष्य को ऐसी योग्यता प्रदान की है जो उसे पहले प्राप्त न थी। शरीअत के आदेशों में परिवर्तन पर इसके भी प्रभाव होते हैं।

क. चिकित्सा पद्धति में विकास के सम्बन्ध में फ़कीहों का दृश्टिकोण : व्यक्ति और समाज की विशेष योग्यताओं पर आधारित अनेक शरई नियम हैं। जब यह योग्यताएँ परिवर्तित हो जायें तो नियम भी परिवर्तित हो जायेंगे। इसके लिए मैं चिकित्सा और उपचार के सम्बन्ध में उलमा के प्राचीन विचारों का उदाहरण दूँगा[1]।, उनका विचार यह था कि चिकित्सा और उपचार आवश्यक कर्त्तव्य नहीं है, न अनिवार्य है और न पसन्दीदा बल्कि यह वैध है, यहाँ तक कि कुछ फ़कीहों ने यह फ़तवा दिया कि उपचार न कराना बेहतर है, इसलिए कि उपचार का

---

1. देखिये जो हमने लिखा है अपनी किताब अत्तवक्कुल अध्याय तदावा व तवक्कुल पृष्ठ 75–95 इसमें हमने फ़कीहों और सूफ़ियों के विचारों का उल्लेख किया है

सफल हो जाना निश्चित नहीं है और बहुत से उपचार रोग की पहिचान, मात्र अनुमान और कल्पना के आधार पर होते हैं।

परन्तु आज चिकित्सा पद्धति के विकास और इसमें प्रयुक्त यन्त्रों के आविष्कार के माध्यम से जो प्राचीन काल में किसी ने सोचा भी नहीं होगा, इसी तरह फार्मेसी और चिकित्सा विज्ञान के विकास के बाद पूरी तरह सफल औषधियाँ आ गई हैं, तो हम किसी व्यक्ति से कैसे कहें कि सिर का दर्द सहन करते रहो, जबकि इस्प्रिन की एक गोली उसको इस दर्द से मुक्ति दिला देगी, मनुष्य जबड़े का दर्द क्यों सहन करे, गुर्दे और बवासीर आदि का कष्ट क्यों सहन करे? जबकि इन सबके लिए प्रसिद्ध और परीक्षित औषधियाँ उपलब्ध हैं, और जब सफल उपचार उपलब्ध हो तो ऐसी स्थिति में मनुष्य का किसी कष्ट को सहन करते रहना जबकि वह उस कष्ट से आसानी से मुक्ति पा सकता है, किसी भी तरह वैध नहीं क्योंकि वह स्वयं को अवैध रूप से अकारण कष्ट और हानि पहुँचा रहा है। शरीअत का एकमत नियम है कि : ''न स्वयं हानि सहन किया जाये और न दूसरे को हानि पहुँचाया जाये[1]''। यदि हानि पहुँच जाये तो उसके निराकरण का प्रयास करना अनिवार्य है, इसीलिए फ़क़ीहों ने ऐसे नियम भी बनाये : ''जहाँ तक हो सके हानि का निराकरण किया जायेगा'' और ''हानि का निराकरण उसी जैसी हानि से या उससे बड़ी हानि के माध्यम से नहीं किया जायेगा''।

आज इन्सान के पास ऐसी योग्यताएँ उपलब्ध हैं जिनकी प्राचीन काल में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी जैसे अंगों का प्रत्यारोपण, परन्तु चिकित्सा और विज्ञान के विकास ने इस अंसभव को संभव कर

---

1. इसकी पड़ताल पहले प्रस्तुत की जा चुकी है।

दिखाया, योग्यताओं में इस परिवर्तन के प्रभाव शरई क़ानूनों पर भी होंगे।

ख. संचार माध्यमों का विकास और मनुश्य का रात में घर आनाः एक हदीस है जिसमें रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने मना फ़रमाया : ''कोई व्यक्ति रात में यात्रा से अपने घर वालों के पास न आये[1] '' अर्थात जब व्यक्ति सफर से आये तो आधी रात में अचानक अपने घर वालों के पास जाना उसके लिए उचित नहीं, बल्कि उसके लिए अनिवार्य है कि वह अपने आगमन को स्थगित करे और दिन में घर वालों के पास आये, यह आदेश इसलिए था कि उस समय मनुष्य अपने आने की सूचना किसी माध्यम से नहीं दे सकता था, तो आप (सल्ल0) ने अचानक इस तरह घर जाने से मना किया, मानो वह मनुष्य अपने घरवालों के सम्बन्ध में किसी संदेह में लिप्त हो, या उनकी अचानक तलाशी लेना चाहता हो और मना करने का एक उद्देश्य यह भी है कि महिला अपने पति से मिलने के लिए साज–सज्जा के माध्यम से तैयार हो जाये, अतः आप (सल्ल0) ने फ़रमाया कि रात के समय अपने घर मत जाओ। यह उस समय की बात है जब आदमी अपने घर परिवार से सम्पर्क में नहीं रह पाता था, परन्तु अब परिस्थिति बदल चुकी है, मनुष्य टेलीफोन, फैक्स और मोबाईल आदि के माध्यम से अपने आगमन की सूचना दे सकता है, अब अचानक पहुँचने की मनाही का कारण शेष नहीं रहा, इसलिए अब बदली हुई परिस्थिति में नियम भी बदल जायेगा अर्थात मनुष्य

---

1. यह हदीस लम्बी हदीस का एक टुकड़ा है इसमे है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने यात्रा से वापस आकर रात में घर जाने से मना किया है। इसकी रिवायत को मुस्लिम ने अल–इमारः (715) में अबू दाऊद ने अल–जिहाद (2776) में, नसई ने सुनलूल कुब्रा में हज़रत जाबिर से की है।

रात–दिन में से किसी भी समय अपने घर सूचना देकर पहुँच सकता है।

एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि इस समय किसी विशेष समय पर घर पहुँचना मनुष्य के वश में नहीं है, अब तो जहाज, रेल या समुद्री जहाज़ तय करता है कि व्यक्ति को किस समय अपने गन्तव्य तक पहुँचना है।

ग. पति के साथ पत्नी का भाहर से स्थानान्तरण : हनफी मत के फ़कीह कहते हैं कि यदि पति पूरा महर अदा कर दे तो पत्नी अपने पति के अधीन रहेगी, यहाँ तक कि यदि पति एक शहर से दूसरे शहर में जाना चाहे और पत्नी को भी ले जाना चाहे तो उसका जाना अनिवार्य है। बाद के हनफी उलमा ने यह फ़तवा दिया कि ऐसा प्राचीन काल में था जब पुरुष अपनी पत्नी और संतान के सम्बन्ध में वफादार हुआ करता था। अब (इन फ़कीहों के युग में) यदि महिला अपने पति के साथ दूसरे शहर में जायेगी और अपने घर वालों और अभिभावकों से दूर हो जायेगी तो हो सकता है कि पति उसके साथ अत्याचारपूर्ण व्यवहार करे और उस महिला का कोई समर्थक न हो, इसलिए महिला का अधिकार है कि यदि वह न जाना चाहि तो न जाये। इस फ़तवे का आधार यह था कि दूसरे शहर में होने के कारण उसका अपने मायके वालों के सम्पर्क में रहना कठिन हो जायेगा, परन्तु अब यह संभव है कि महिला पति के साथ चाहे किसी शहर में हो वह अपने परिवार के साथ सरलतापूर्वक सम्पर्क में रह सकती है, क्योंकि दुनिया अब एक गाँव बन गई है, इस समय हम संसार में होने वाली किसी भी घटना की जानकारी तुरन्त प्राप्त कर सकते हैं, अतः जब योग्यताएँ और संसाधन बदल गये तो इसके कारण फ़तवा भी बदल जायेगा और क़ानून भी बदल जायेंगे।

(8)
उमूम–ए बलवा
(सामान्य विपत्ति)

कुछ मामलों में बलवा (विपत्ति) के सामान्य हो जाने के कारण भी फतवा बदल जाता है। फ़कीहों ने बलवा (विपत्ति) के फैलने के कारण बहुत से मामलों में ढील दी है; चूंकि किसी मामले में अधिकतर लोगों का लिप्त हो जाना इस बात की दलील है कि लोगों को इसकी आवश्यकता है, और स्पष्ट है कि शरीअत लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखती है। फ़कीह लोग कहते हैं कि हाजत को आवश्यकता की श्रेणी में माना जायेगा।

क. नंगे सिर रहना और रास्तों में खाना : जिन चीजों की आवश्यकता लोगों को सामान्य रूप से हो जाती है मुफ्ती उनमें ढील दे देते हैं, जैसे कुछ फ़कीह नंगे सिर रहने वाले व्यक्ति की गवाही स्वीकार नहीं करते थे, परन्तु स्पेन में उसकी गवाही स्वीकार की जाती थी; इसलिए कि लोग वहाँ साधारणतः नंगे सिर रहते थे। ऐसा इसलिए कि उनपर उस समय स्पेनियों से मेल–जोल का प्रभाव था। तथापि नंगे सिर रहने से गवाह की ईमानदारी या शराफत कम नहीं हो जाती थी।

ख. दाढ़ी मुड़वाना : दाढ़ी के सम्बन्ध में कुछ उलमा ने बहुत कठोरता दिखाई है, कुछ लोगों ने दाढ़ी रखने को वाज़िब (अनिवार्य) कहा है और

दाढ़ी मुड़वाने को हराम ठहराया है, कुछ लोगों ने कहा कि दाढ़ी रखना सुन्नत है इसलिए इसका मुड़वाना घृणित है, हमारे युग में इस सम्बन्ध में किसी सीमा तक ढील की आवश्यकता है, इसलिए कि सम्पूर्ण इस्लामी देशों में साधारण मुसलमानों की अधिक संख्या दाढ़ी नहीं रखती, उन सबके बारे में हमारा फतवा क्या होना चाहिए? क्या हम इन सबको पूर्ण रूप से गवाही की योग्यता से खारिज कर देंगे? और यदि हम दाढ़ी न रखने वाले को गवाही के योग्य न समझें तो फिर हमे न्याय के लिए गवाह कहाँ से मिलेंगे? इसलिए हमारे युग में इस सम्बन्ध में भी छूट देना अनिवार्य है[1]।

ग. टेलीविजन : आज घर–घर टेलीविजन का चलन हो गया है। कुछ उलमा टेलीविजन देखने की आलोचना करते थे। बल्कि कुछ ने इसको हराम कहा है, चूंकि इसका आधार चित्र पर है और चित्र बनाना हराम है, मैं कहता हूँ कि क्या आज यह विवेकपूर्ण है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी हो जो टेलीविजन न देखे और देश–विदेश और इस्लामी विश्व की परिस्थितियों से भिज्ञ न हो? यह ठीक है कि टेलीविजन में कुछ गाने नापसंदीदा होते हैं और कुछ चित्र भी ऐसे होते हैं जिनका देखना वैध नहीं, और भी कुछ बुराईयाँ हैं; तथापि आज टेलीविजन उन उपकरणों में से है जो सामान्य विपत्ति में सम्मलित है[2]। मुसलमान ऐसी व्यवस्था कर सकता है कि इसकी अच्छाइयों से लाभान्वित हो और बुराईयों से बचने का प्रयास करे।

---

1. देखिये हमारी किताब अल हलाल वल हराम पृष्ठ 85 पर दाढ़ी से सम्बन्धित वार्ता
2. विवरण के लिए देखिये हमारी किताब फताबा मआसिरः पृष्ठ 694–697 / 1

घ. विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की साझेदारी : आज के युग में सामान्य विपत्ति के फैल जाने का एक उदाहरण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी है, विशेष रूप से वह विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा और उच्च शिक्षा के सभी विभागों में मर्दों के बराबर आ चुकी है, अतः औरते डाक्टर, इंजीनियर, एकाउन्टेन्ट, मैनेजर, अर्थशास्त्री, प्रशिक्षक, विज्ञान और गणित की विशेषज्ञ और सभी विशेष कोर्सों में शिक्षिका हैं।

आज औरतों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत नाम कमाया है यहाँ तक कि कुछ तो मर्दों से भी बाजी ले गईं।

वर्तमान परिस्थिति, मुफ्तियों से विशेष रूप से ऐसे मुफ्ती से जो औरतों के सम्बन्ध में कठोर रवैया अपनाते हैं, माँग करती है कि कठोरता और तंगी की प्रवृत्ति छोड़ दें और औरत को नियमानुसार काम करने की अनुमति दें। उन विभागों और व्यवसायों में जो उनके लिए उपयुक्त हों और जिनमें वह विशेषज्ञ हो और विशेष रूप से जो उनकी प्रकृति के अनुकूल हो ताकि वह अपनी बेटियों की सेवा कर सकें। रहा परीक्षा में पड़ जाने का भय तो इसको मात्र बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत करना और औरत को घर की चार–दीवारी में क़ैद करने का आदेश देना वैध नहीं है। आज औरत प्रोफेसर हो सकती है, डाक्टर और नर्स हो सकती है, और जीवन के अनेक क्षेत्रों में वह पूरी अमानतदारी और योग्यता के साथ रिक्त पदों को भर सकती है बल्कि बहुत से मर्दों से भी बाजी ले जा सकती है।

नौकरी करने वाली महिलाओं का मामला यह है कि कभी तो नौकरी उसकी आवश्यकता होती है; चूंकि कोई उसका भरण–पोषण करने वाला नहीं होता और न कोई ऐसा आय का माध्यम होता है जिसपर वह जीवन–निर्वाह कर सके और कभी उसकी घरेलू परिस्थितियाँ

उसको काम करने के लिए विवश कर देती हैं; अतः दो महिलाओं की कहानी क़ुरआन में आई है जिनकी बकरियों को हज़रत मूसा (अलै0) ने पानी पिलाया था : ''मूसा (अलै0) ने उन दो महिलाओं से पूछा तुम्हे क्या परेशानी है, उन्होंने कहा हम अपने जानवरों को पानी नहीं पिला सकते जब तक कि ये चरवाहे अपने जानवर न निकाल ले जायें और हमारे पिता एक बहुत बूढ़े आदमी हैं।''

(सूरः अल क़सस : 23)

ऐसी भी परिस्थितियाँ आ सकती हैं कि समाज को महिला की सेवा की आवश्यकता हो अथवा ऐसा भी हो सकता है कि कुछ सेवाएँ औरतों के लिए ही उपयुक्त हों, मर्दों के लिए नहीं जैसे लडकियों को पढ़ाना, महिलाओं का उपचार करना या महिला अस्पताल में नर्सिंग करना, कुछ क्षेत्रों में जीवन के संसाधन और अल्प आय विवश कर देते हैं कि मर्द और औरत दोनो काम करें तब जाकर घर की आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है, इसलिए इस प्रसिद्ध वाक्य पर बल देना उपयुक्त नहीं है कि औरत मात्र घर के लिए पैदा की गई है, और वही उसका कार्यक्षेत्र है निसन्देह जीवन की आवश्कताएँ और उसकी अधिकतर माँगों ने औरत को विवश कर दिया है कि वह घर की चारदीवारी से निकल कर परिश्रम करे।

यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है कि धार्मिक पतन फैल जाने के कारण मात्र उन्हीं मामलों में ढ़ील देने की गुंजाइश होती है जो हराम नहीं है, जो बातें क़ुरआन और हदीस से सिद्ध हैं और उनको हराम कहा गया है, विशेष रूप से जो बड़ी बुराईयाँ और नग्नता में सम्मलित है उसमें सुस्ती उचित नहीं है, और न ही उनमें फ़तवा के परिवर्तन की

गुंजाइश है, क्योंकि यदि फ़तवा का हस्तक्षेप इसमें भी होगा तो यह हराम को हलाल और बुराई को वैध करना होगा, जिसे स्वीकार नहीं किया जायेगा, मुसलमान के लिए आवश्यक है कि वह हलाल और पवित्र चीजों की वास्तविकता से जुड़ा रहे, हराम चीजों से बचे, बुराईयों को निरस्त करे, चाहे सामान्य लोग उसमें लिप्त ही क्यों न हो गये हों।

धार्मिक पतन के फैल जाने के नियम की रियायत मात्र उन मामलों में किया जायेगा जिनमें मतभेद है और उनपर मतैक्य निश्चित नहीं है जैसा की संगीत, गाना, शतरंज, बिना घमंड के टखनों से नीचे कपड़े लटकाना, दाढ़ी मुड़वाना आदि मामले जिनमें उलमा के बीच मतभेद है और जिनकी वैधता और अवैधता के सम्बन्ध में उलमा के अनेक कथन हैं, इन समस्याओं में उलमा के कथन भिन्न होने का कारण वह हदीसे हैं जो उन अध्यायों में आई हैं, इन हदीसों के प्रमाण के सम्बन्ध में लोग मतभेद करते हैं कुछ तो वह हैं जो उनको स्वीकार करते हैं और कुछ वह है जो उन्हें निरस्त करते हैं, अथवा फिर वह उसके तर्कों में मतभेद करते हैं। या उनकी समस्याओं के निष्कर्ष में जिनमें कुरआन और हदीस से प्रमाण नहीं है, जिनका आधार कल्पना, भलाई तलाश करना, सुधार करना अथवा रीति–रिवाज या सहाबा के कथन या इनके अतिरिक्त उन सिद्धान्तों पर है जिनमें वाद–विवाद, किसी बात को स्वीकार करने और निरस्त करने की गुंजाइश हो।

(9) सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति का परिवर्तन

राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं, यह एक प्रकार से विकास की प्रक्रिया है। संसार की अधिकतर चीज़े और मामले ऐसे हैं जो एक दशा पर अटल नहीं रहते बल्कि बदलते रहते हैं और उनके सम्बन्ध में मनुष्य का दृष्टिकोण भी बदलता रहता है।

क. इस्लामी समाज में ग़ैर मुस्लिम : इस्लामी समाज में ग़ैर मुस्लिम अर्थात ज़िम्मियों की समस्या, जिसको मुस्लिम समाज में धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्या और ग़ैर मुस्लिम समाज में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्या कहा जाता है, मुसलमानों के ग़ैर मुस्लिमों से सम्बन्धों की समस्याः क्या ये सम्बन्ध शान्ति पर आधारित होंगे या युद्ध पर, इसी प्रकार औरत की समस्या, उसकी यात्रा, शिक्षा और नौकरी की समस्या और राजनीतिक प्रक्रिया में उसकी भागीदारी आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो संसार की महत्वपूर्ण समस्याओं में से हैं और उन समस्याओं में अपने प्राचीन फ़िक़्ही भण्डार के आधार पर वर्तमान समाज का साथ नहीं दे सकते।

हमारे लिए आवश्यक है कि हम शारेअ (विधाता) के उद्देश्य को सामने रखें और आंशिक नियमों को उन सम्पूर्ण उद्देश्यों की रोशनी में समझें और एक समस्या में निहित विभिन्न क़ुरआन और हदीस की

दलीलों को एक दूसरे से जोड़े। पवित्र कुरआन में है : ''अल्लाह तुम्हे इस बात से नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ भलाई और न्याय का व्यवहार करो जिन्होंने दीन (धर्म) के मामले में तुमसे युद्ध नहीं किया और तुम्हे तुम्हारे घरों से नहीं निकाला है। अल्लाह न्याय करने वालों को पसन्द करता है।''

(सूरः मुम्तहिना : 8)

ग़ैर मुस्लिमों से सम्बन्धों के मामले में यह आयत मौलिक और क़ानून जैसी है, यदि ज़िम्मी, ग़ैर मुस्लिम आदि शब्दों को ग़ैर मुस्लिम पसन्द नहीं करते हैं और कहते हैं कि हमको जिम्मी न कहा जाये बल्कि मवातिनीन (नागरिक) कहा जाये, तो हम उनको क्या उत्तर दें ?

हमारा उत्तर यह है कि तमाम मुस्लिम फ़कीहों ने कहा कि ज़िम्मी दारुल इस्लाम (इस्लामी राज्य) के नागरिक हैं, इसको आधुनिक शब्दावली में हम यह कह सकते हैं कि वह नागरिक हैं, तो क्यों न हम ज़िम्मी शब्द को छोड़ दें जो उन्हे बुरा लगता है, उनको नागरिक क्यों न कहें। हज़रत उमर (रज़ि0) ने तो वह शब्द छोड़ा था जो शब्द ज़िम्मी से अधिक महत्वपूर्ण था। उन्होंने तो शब्द ज़िजिया को ही छोड़ दिया। जो कुरआन में उल्लिखित है। घटना यह है कि क़बीला बनी तग़लब के अरब लोग हज़रत उमर के पास आये और कहा कि हम अरब के रहने वाले लोग हैं शब्द ज़िजिया हमारे सम्मान के विरुद्ध है। आप हमसे जज़िया तो लीजिए परन्तु इसका नाम बदलकर ज़कात रख दीजिए चाहे अधिक ले लीजिए, हम इसके लिए तैयार हैं। हज़रत उमर (रज़ि0) को प्रारम्भ में संकोच हुआ फिर सहाबा ने उनसे कहा कि ये लोग ताक़तवर क़ौम हैं, यदि हमने इनको छोड़ दिया तो ये रोमियों से मिल जायेंगे और यह हमारे लिए हानिकारक होगा; अतः हज़रत उमर (रज़ि0) ने उनका

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कहा : ''ये मुर्ख लोग हैं अर्थ पर तैयार हो गये और नाम पर आपत्ति की[1]।

क़ानून का आधार तथ्यों और ठोस आधारों पर है न कि नाम और शीर्षक पर, आज इस बात की आवश्यकता है कि मुस्लिम समाज में ग़ैर मुस्लिमों की समस्या और वर्तमान युग में औरतों की समस्याओं पर नये सिरे से विचार करें और परिस्थिति के परिवर्तन की रियायत करते हुए विभिन्न मामलों में फ़िक़्ह के क्रमिक और आसानी के पहलू को वरीयता दें।

हमारे बहुत से उलमा और बुजुर्ग किताबों की दुनिया में जीवन व्यतीत करते हैं, तथ्यों में नहीं बल्कि तथ्यपरक फ़िक़्ह से तो पूर्णतः दूर हैं, या यूँ कहिए कि तथ्यों पर आधारित फ़िक़्ह उनसे दूर हैं, इसलिए कि उन्होंने ''जीवन'' को इस तरह समझा ही नहीं जिस तरह उन्होंने प्रारम्भिक फ़कीहों की किताबों को पढ़ा है, इसलिए उनका फ़तवा ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह कब्र से दिया गया हो।

संगठन *अल–सलफियतुल जेहादीयः* के युवकों, संगठन अल कायदा और तंज़ीमुल जेहाद के युवकों को मिस्र और अन्य कई क्षेत्रों में यह फ़तवा दिया गया कि वह सम्पूर्ण संसार से युद्ध करे, पूर्व और पश्चिम से युद्ध करें, ईसाइयों और मूर्तिपूजकों से युद्ध करें, क्योंकि किताब वाले अर्थात इसाई और यहूदी, मूर्ति पूजक और नास्तिक सबके सब काफिरों के खेमें में हैं इनसे युद्ध करना अनिवार्य है, उनका तर्क यह आयत है : ''तुम उनसे लड़ते रहो यहाँ तक कि फ़ितना शेष न रहे और दीन अल्लाह के लिए हो जाये'' (सूरः बक़र : 193) और यह आयत है : ''और मूर्तिपूजकों से सब मिलकर लड़ों जिस तरह वह सब मिलकर

1. देखिये हमारी पुस्तक ग़ैरल मुस्लिमीन फ़ी मुज्तमइल इस्लामी पृष्ठ 51, वहबः प्रकाशन

तुमसे लड़ते हैं''। (सूरः तौबा : 36) और इसी प्रकार की दूसरी आयत जिसको आयते सैफ अर्थात तलवार वाली आयत कहा जाता है।

ये लोग फ़िक्ह से भी तर्क लाते हैं कि काफिरों से जेहाद करना उम्मत पर फर्ज़े किफ़ाया (वह कर्त्तव्य जो यदि कुछ लोग अदा करे तो सभी मुसलमानों की ओर से अदा हो जाता है और यदि कोई न अदा करे तो उसका गुनाह सभी मुसलमानों पर पड़ता है) है और यह फर्ज़ उस समय तक अदा नहीं हो सकता जब तक कि कम से कम वर्ष में एक बार काफिर देशों से युद्ध न कर लिया जाये अर्थात उनके घर में घुसकर उनपर आक्रमण किया जाये, चाहे उनसे मुसलमानों को कोई हानि भी न पहुँची हो।

ये लोग दुनिया की वर्तमान परिस्थितियों से पूर्ण रूपेण अनभिज्ञ हैं, आज दुनिया एक गाँव बन गई है, और उनको यह भी ज्ञात नहीं कि वर्तमान संसार में अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और न्यायिक संस्थाएँ स्थापित हैं, अन्तराष्ट्रीय सन्धियाँ हैं, और अन्तराष्ट्रीय विभाग स्थापित हैं।

आज की दुनिया में यदि अकारण कोई देश दूसरे देश पर आक्रमण करे तो सारी दुनिया उसको अपराधी मानेगी। आज राष्ट्रीय सीमाओं का सम्मान किया जाता है और राष्ट्रों के बीच विवादों का शान्तिपूर्ण ढ़ंग से समाधान किया जाता है, और ऐसे अन्तराष्ट्रीय समझौते भी हैं कि युद्ध स्थिति में भी उनका सम्मान करना आवश्यक है। इसी प्रकार युद्धबंदियों के सम्बन्ध में विशेष क़ानून हैं।

हम मुसलमान भी इसी जगत का हिस्सा हैं, इसमें हम सम्पूर्ण जगत से बेखबर होकर अकेले नहीं रह सकते, और जब हम अपनी

प्राचीन फ़िक़्ही और शरई विरासत का अध्ययन करते हैं तो हम देखते हैं कि उन प्रमाणों और कथनों की प्रवृत्ति यह है कि विश्व शान्ति स्थापित हो, बल्कि तुलनात्मक अध्ययन और विचार–विमर्श के पश्चात यही प्रवृत्ति वरीयता देने योग्य और सन्मार्ग प्रतीत होती है, मैने अपनी प्रकाशित हो रही पुस्तक *''फ़िक़्हुल जिहाद''* में इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है।

फ़कीहों ने फर्ज–ए किफाया की जो बात कही है तो इसकी सबसे अच्छी व्याख्या शाफई फ़कीहों के यहाँ मिलती है, यहाँ जिहाद का अर्थ है : अनिवार्य अस्त्र–शस्त्र की शक्ति एकत्र करना जो शत्रु का सामना कर सके और सीमाओं और खतरे की जगहों पर प्रशिक्षित सेना, थलसेना, जलसेना, और वायुसेना प्रत्येक स्तर पर सेनाओं को निर्धारित करना। यदि कोई शत्रु, देश पर आक्रमण करने का इरादा करे तो उसको आवश्यकतानुसार उत्तर दिया जाये और इस तरह अपने देश और देशवासियों की रक्षा की जाये।

ख. इसाईयों को उनके समारोहों पर भाुभकामनाएँ देना :– वर्तमान युग में संसार की बदली हुई परिस्थिति ने मुझे प्रेरित किया कि मैं शेखुल इस्लाम इब्ने तैमिया के उस दृष्टिकोण का विरोध करूँ कि इसाईयों को उनकी ईदों पर शुभकामनाएँ देना हराम है और इसको वैध ा ठहराऊँ, यदि उन इसाईयों से मुसलमानों के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण हों तो उनको शुभकामनाएँ भी दी जा सकती है, विशेष रूप से ऐसे लोगों को जिनके साथ किसी मुसलमान का विशेष सम्बन्ध हो जैसे पड़ोसी हो, रिश्तेदार हों या सहपाठी हों या सहकर्मी हो आदि, उनको ऐसे अवसरों पर शुभकामनाएँ देना उस नेकी में सम्मिलित है जिससे अल्लाह तआला

ने हमे मना नहीं किया, बल्कि अल्लाह न्याय करने वालों को पसन्द करता है, कुरआन में है : ''अल्लाह न्याय करने वालो को पसन्द करता है'' (सूरः मुम्तहिना : 8)

इसाईयों को विशेष रूप से उस समय तो शुभकामना देना पूर्णतः वैध है जब वह मुसलमानों को उनकी ईद पर शुभकामना दें। अल्लाह तआला ने फरमाया है : ''और जब कोई सम्मान पूर्वक तुम्हे सलाम करे तो उसको उससे अच्छे ढंग से उत्तर दो या कम से कम उसी तरह उत्तर दो[1]। (सूरः निसा : 84)

ग. हज के मनासिक (कर्मों) में आसानी की आव□यकता :

परिस्थितियों के परिवर्तन से जिन चीज़ों पर नये सिरे से चिन्तन करना आवश्यक है, उनमें से हज के मनासिक भी हैं, चूँकि इस्लाम में इबादतें आसानी और सुविधा पर आधारित हैं जैसा कि अल्लाह तआला का कथन है : ''अल्लाह तुम्हारे साथ नरमी करना चाहता है, और तुम्हारे लिए कठोरता नहीं चाहता। (सूरः तौबा : 185)

एक और आयत में है : ''और दीन में तुमपर कोई तंगी नहीं रखी'' (सूरः हज : 78)

रसूलुल्लाह (सल्ल0) ने जब हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि) और हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि) को यमन भेजा तो उनको नसीहत करते हुए फ़रमाया : ''सुविधा का रवैया अपनाना कठिनाई का नहीं[2]''।

हज़रत अनस (रज़ि) की रिवायत में पूरी उम्मत को इस बात की

---

1. अतिरिक्त विवरण के लिए देखिये हमारी किताब फतावा मआसिरः 686–691/3
2. हदीस सर्वसम्मत हैः बुख़ारी किताबुल जेहाद वस्सेयर (3038), मुस्लिमः अल–जेहाद वस्सेयर (1733), अहमद (19742) सबने हज़रत अबू मूसा अशअरी से रिवायत की है।

नसीहत की गई कि, इसके शब्द हैं : ''सुविधा का रवैया अपनाओं और कठिनाई के रवैयों से बचो[1]'' इसमें कोई सन्देह नहीं कि हज एक विशेष इबादत है, अन्य इबादतों की तुलना में हज के अन्दर सुविधा पैदा करना विभिन्न निम्नलिखित कारणों से अधिक आवश्यक है :

प्रथमः बहुत से लोग इस फ़र्ज को इस प्रकार अदा करते हैं कि उनका स्वास्थ्य और भौतिक परिस्थिति पूर्ण रूप से उनके अनुकूल नहीं होती, अधिकतर लोग अपने घर और देश से दूर यात्रा करके आते हैं और 'यात्रा यातना का एक टुकड़ा है।'

द्वितीयः इधर कई वर्षों से हज के मौसम में भीड़ बहुत अधिक हो जाती है जिसकी शिकायत सभी मुसलमानों को है, हालाँकि यह मुस्लिम उम्मत पर अल्लाह तआला की कृपा है। इस भीड़ का प्रदर्शन अरफ़ात से जाते हुए, मुज़दल्फा में रात व्यतीत करते हुए अथवा मिना में रात व्यतीत करते हुए अथवा तवाफे इफाजा (हज से लौटते समय काबे की परिक्रमा) और शैतान को कंकड़ी मारते हुए होता है, हाज़ियों में भी चेतना की कमी होती है। तो यदि हम उनके हज के मनासिक अदा करने में सुविधा पैदा करें तो यह उनके लिए अच्छी इबादत में सहायक होगा और उसी में ढ़ेरों भलाई है।

तृतीय : अल्लाह के रसूल (सल्ल0) ने विशेष रूप से हज के विभिन्न मामलों में सुविधाएँ प्रदान की, आप से कुर्बानी के दिन बहुत से कर्मो को आगे–पीछे करने के बारे में पूछा गया, आप (सल्ल0) ने सभी लोगों से फरमाया : ''करो कोई हर्ज़ नहीं है[2]''। आपने हज़ के दौरान विशेष रूप

1. हदीस सर्वसम्मत है : बुख़ारी, अल इल्म(69), मुस्लिम, अल–जेहाद वस्सेयर (1734) अहमद(13175) अबू दाऊद(4794) सभी ने हज़रत अनस से रिवायत की है।
2. हदीस सर्वसम्मत है : बुख़ारी, अल इल्म(83), मुस्लिम फिल हज (1306) नुसनद अहमद (6484) अबू दाऊद (2014) तिर्मिजी अल हज (916) इब्ने माजा मनासिक (3051) सबने इब्ने उमर से रिवायत की है।

से दीन के मामले में अतिशयोक्ति से मना किया। आपने कंकड़ी मारने के लिए कंकड़ियाँ उठाते हुए फ़ज़्ल बिन अब्बास से फ़रमाया : ''इस तरह की कंकड़िया मारो और धर्म के मामले में अतिशयोक्ति से बचो, तुमसे पहले के लोग धर्म के मामले में अतिशयोक्ति करने के कारण ही विनष्ट हुए[1]।''

हमने इसीलिए इमाम शाफई के मसलक के अनुसार मग़रिब (सूर्यास्त) से पहले अरफात के मैदान से प्रतिदिन प्रस्थान करने की अनुमति दे दी है और इस बात की भी कि मुज़दल्फा में रात न गुज़ारी जाये और कंकड़ी मारने और तवाफे इफाजा (हज से लौटते समय अन्तिम परिक्रमा) ईद की रात में आधी रात के बाद भी किया जा सकता है। इसी प्रकार कंकड़ी मारने के दिनों में मिना में रात गुज़ारने पर बल नहीं दिया गया है, कंकड़ी मारने का कार्य दोपहर से पहले किया जा सकता है आदि, बहुत सी सुविधाएँ हैं जो परिस्थितियों की माँग के अर्न्तगत वर्तमान युग में जारी रखी गई हैं[2]।

---

1. अहमद (3248) इसकी पड़ताल करने वालो ने कहा है कि इसको रिवायत करने वाले रिजाल इमाम मुस्लिम की शर्तों के अनुसार हैं और शेखैन के भी रावी है, जयाद बिन हसीन के अतिरिक्त क्योंकि वह मुस्लिम के रावी है, नसई मनासिकुल हज (3057) इब्ने माजा अल मनासिक (3029) सबने इब्ने अब्बास से रिवायत की है।
2. देखिये हमारी किताब ''मेयः सुवाल फिल हज वल उमरः'' दारुल क़लम दमिश्क द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण 2002

(10)
मत और विचारों का परिवर्तन

जिस प्रकार जानकारी का परिवर्तन फ़तवा में परिवर्तन का एक कारण है उसी प्रकार मत और विचार का परिवर्तन भी उसके कारणों में से है, कभी–कभी जानकारी में परिवर्तन नहीं होता लेकिन मुफ्ती की व्यापक जानकारी, विभिन्न दृष्टिकोणों के अध्ययन, कुछ दृष्टिकोणों से कुछ दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन और पूछ गये प्रश्न में चिन्तन के आधार पर उसकी सोच बदल जाती है, अथवा एकेडमिक वार्ता आदि के आधार पर उसके सामने समस्या के सभी छिपे हुए पक्ष प्रकट हो जाते हैं, तो इसके फलस्वरुप मुफ्ती का मत और उसका फतवा बदल जाता है।

मत का परिवर्तन कभी–कभी आयु बढ़ने, सोच में परिपक्वता आने और जीवन के मामलों में व्यापक अनुभव हो जाने के फलस्वरुप भी होता है और कभी विभिन्न प्रभावों के कारण मुफ्ती का विचार पूर्णतः बदल जाता है, अतः वह कठोरता और तंगी की तुलना में ढ़ील और सुविधा का रवैया अपनाता है, कभी ऐसा होता है कि शब्दों और वाक्यों के अनुकरण के प्रयास की तुलना में उद्देश्यों और आदेशों के कारणों को महत्व देता है और फिर वह एक विधि को छोड़कर दूसरी विधि की ओर अथवा एक मसलक को छोड़कर दूसरे मसलक की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। हमारे प्रारम्भिक उलमा में भी ऐसा हुआ कि कुछ उलमा ने एक मत को छोड़कर दूसरा मत अपना लिया, जैसे अहल–ए हदीस (किसी मसलक के स्थान पर सीधे हदीस का अनुसरण करने वाले) से अहल–ए राय (विवेक के अनुसार समस्याओं पर विचार करके किसी मत को

अपनाने वाले) हो गये, इस तरह के परिवर्तन का उदाहरण इमाम अबू जाफ़र तहावी आदि का है।

इस मौलिक परिवर्तन का प्रभाव उन आंशिक फ़तवों के परिवर्तन पर भी होता है जो कोई फ़कीह देता है। यदि कोई फ़कीह कठोरता से आसानी को या वाक्य के प्रत्यक्ष पहलू की तुलना में उद्देश्य को महत्व दे, तो स्पष्ट है उसका प्रभाव उसके फ़तवा पर भी होगा। मत और विचार में परिवर्तन के और भी अनेक उदाहरण हैं।

इन्ही उदाहरणों में से एक उदाहरण अमीरुल मोमिनीन उमर (रज़ि) का फर्ज इबादतों के ज्ञान के सम्बन्ध में वह प्रसिद्ध निर्णय है जिसे हमारीयः या हजरीयः का नाम दिया गया है अर्थात कोई मर जाये और वारिसों में पति, माँ, दो या दो से अधिक माएँ, सौतेले भाई, एक या एक से अधिक सगे भाई छोड़े। हज़रत उमर (रज़ि) ने इस मामले में फैसला सुनाया कि पति को आधा, माँ को छठा और सौतेल भाईयों को एक तिहाई मिलेगा और सगे भाइयों को कुछ नहीं मिलेगा।

दूसरी बार भी यह मसला हज़रत उमर (रज़ि) के सामने आया तो उन्होंने पिछले फैसले के अनुसार ही फैसला दिया। उसके सगे भाईयों ने कहाः ऐ अमीरुल मोमिनीन! हम भी उसके भाई हैं। हमारा बाप चाहे गधा रहा हो या पत्थर लेकिन हमारी उसकी माँ तो एक ही है। हज़रत उमर (रज़ि) ने इसके बाद इस फैसले का पुनरावलोकन किया, और विरासत को सगे भाइयों को भी सौतेले भाईयों के साथ तिहाई हिस्से में बराबर का भागीदार बना दिया[1]।

1. इब्ने कुदामा ने मुग़नी में लिखा है कि यह मसला अल–मुश्तरिकः कहलाता है। इसी तरह प्रत्येक समस्या जिसमे पति, माँ अथवा दादी और दो अथवा अधिक माँयें, दो या अधिक सौतेले भाई और दो या दो से अधिक सगे भाई एकत्र हो जाये उसमें यही निर्णय होगा। इसे मसला अल–मुश्तरिकः इसलिए भी कहा जाता है कि इसमें

शेष अगले पृष्ठ पर

मेरा विचार है कि इमाम शाफ़ई ने इराक से मिस्र जाकर अपने जो फ़तवे परिवर्तित किये थे, उनमें इसी प्रकार के फ़तवे रहे होंगे अर्थात उन्होंने अपने फतवे चिन्तन और सोच विचार के परिवर्तन के आधार पर परिवर्तित किया होगा, और यह परिवर्तन स्पष्टतः सिद्धान्तों और उपनियमों को बनाने और इमामों से वार्ता के पश्चात हुआ होगा। अन्त में सभी लोगों ने उनको इमाम स्वीकार कर लिया और ज्ञान और चिन्तन की परिपक्वता के उस उच्च स्थान पर पहुँचे जहाँ कोई फ़कीह पहुँच सकता है। इमाम मालिक और इमाम अहमद जैसे बड़े इमामों से भी एक मसले के सम्बन्ध में विभिन्न मत रिवायतों में आये हैं, और उन सबका कारण इमाम के दृष्टिकोण में परिवर्तन है।

मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है। अतः व्यक्तिगत रूप से मेरे भी कुछ फतवे हैं जिनमें मेरा इज्तेहाद मत और चिन्तन के परिवर्तन के आधार पर परिवर्तित हुआ, न कि जानकारी के परिवर्तन या युग और स्थान के परिवर्तन के आधार पर। उदाहरण के लिए यदि इस्लामी बैंक की सुविधा न हो तो मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए सूदी बैंक से कर्ज़ लेकर मकान खरीदने को मैने पूर्णतः हराम ठहराया था, और इस सम्बन्ध में मैने उस्ताद मुस्तफा अल जरक़ा के मत के विरुद्ध फतवा दिया था, चूँकि वह इसकी अनुमति दिया करते थे। कुछ समय के पश्चात मेरा फ़तवा बदल गया, और विभिन्न पहलुओं से इस मसले में चिन्तन करता रहा, फिर मैने अन्त में कुछ शर्तों और नियमों के साथ इसकी अनुमति

कुछ विद्वानों ने सगे भाईयों और सौतेले भाईयों को सौतेले भाई के हिस्से में बराबर का भागीदार कर दिया है।

इसको हिमारीय इसलिए कहा जाता है कि इसके सगे भाईयों ने कहा कि हमारा पिता गधा था लेकिन हमारी माँ तो एक है तो उन सबको उसमें हिस्सेदार बना दिया। यह भी रिवायत है कि हिमार वाली बात कुछ सहाबियों ने कही थी। देखिये अल–मुग़नी 22/7

दे दी। यूरोपीय फ़तवा कॉउन्सिल ने भी यही फ़तवा दिया और अधिकतर उलमा ने इसका समर्थन किया[1]।

1. फतवा का विवरण हमारी पुस्तक फतावा मआसिरा खण्ड तीन पृष्ठ 625 में और इसके बाद फिक्हुल अकल्लीयात में पृष्ठ 154 पर

समापन

हमारी पुरानी किताबों में मुफ्ती के लिए हिदायतें मौजूद हैं कि वह किस तरह उचित फ़तवा दे, और वह उन चेतावनियों से बेखबर न हो जिनकी ओर गहन ज्ञान रखने वाले उलमा ने संकेत किया है कि फतवा के परिवर्तन के लिए किन बातों की रियायत आवश्यक है, जैसे युग और स्थान या परिस्थितियों और रीति–रिवाज का परिवर्तन, इसी प्रकार उन कारणों का जिनकी मैंने वृद्धि की है जैसे जानकारी का परिवर्तन, लोगो की आवश्यकताओं का बदल जाना, योग्यताओं का परिवर्तन, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का बदल जाना, मत और विचार का बदल जाना, और सामान्य धार्मिक पतन आदि, यह सब ऐसे मामले हैं जो मुफ्ती को चिन्तन की व्यापकता और लचक प्रदान करते हैं कि वह लोगो के प्रश्नों का शरीअत के अनुसार उचित उत्तर दे सके।

सफल मुफ्ती वह है जो शरीअत के प्रमाणों अर्थात क़ुरआन और सुन्नत का भली–भाँति अध्ययन करे। आंशिक बातों को सिद्धान्तों की रोशनी में और प्रत्यक्ष आदेश को उद्देश्यों की रोशनी में देखे, इसी प्रकार समस्या को अच्छी तरह समझे, वह मात्र यह न देखे कि अनिवार्य क्या है बल्कि यह भी देखे की वास्तविकता क्या है। अनिवार्य और वास्तविकता दोनों की रोशनी में निर्णय ले जैसा कि इब्ने कय्यिम ने लिखा है। इसी के माध्यम से शरीअत का पाबन्द मुफ्ती सुरक्षित रह सकता है, उसका फ़तवा ठोस होगा, न तो क़ुरआन व हदीस के विरुद्ध होगा और न बुद्धि के विरुद्ध।

हम एक कठोर धरातल पर खड़े हैं, न हम अपने दीन में कोई अतिशयोक्ति सहन करेंगे और न ही शरीअत को अपने हाथों का खिलौना बनायेंगे, न क़ुरआन और सुन्नत के प्रमाणों को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करेंगे, और ऐसा भी नहीं होगा कि क्रमशः प्रमाणों को तोड़–मरोड़कर अपनी इच्छानुसार परिवर्तित कर लें। परन्तु हम अपनी समस्याओं का पवित्र शरीअत के दायरे में रहते हुए समाधान करेंगे और उम्मत की बीमारियों का इलाज उन दवाओं से करेंगे जो अल्लाह तआला ने प्रदान की हैं और जिसमें अल्लाह तआला ने व्यापकता, लचक और निरन्तरता के तत्व रखे हैं, जिनके कारण वह प्रत्येक युग और प्रत्येक परिस्थिति के लिए उपयुक्त है ''और अल्लाह तआला जिसके साथ भलाई का इरादा करता है, उसको दीन (धर्म) में समझ प्रदान कर देता है[1]।

****

1. हदीस सर्वसम्मत है : बुख़ारी ने अध्याय अल इल्म में रिवायत किया और मुस्लिम ने अध्याय अल–ज़कात में मुआविया से रिवायत किया (2389)।